श्री पुष्पदन्त प्रणीत

श्री शिवमहिम्नः स्तोत्र

तथा

अन्य संग्रह

महेशान्नापरो देवो महिम्नो नापरा स्तुतिः ।
अघोरान्नापरो मंत्रो नास्ति तत्त्वं गुरोः परम् ॥

संग्रहकर्ता :
१००८ श्रीमत्परमहंस परिब्राजकाचार्य
परम वैराग्यमूर्ति ज्ञानमहार्णव
"गीतास्वामी" जी महाराज

सान्वय-भाषा भाष्यकार
"रामप्रताप शास्त्री"

❀ श्री पुष्पदन्त प्रणीत ❀

शिव महिम्नः स्तोत्र

तथा

अन्य संग्रह

संग्रहकर्ता :

१००८ श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य

परम वैराग्यमूर्ति ज्ञानमहार्णव

"गीता स्वामी" जी महाराज

सौजन्य से :-

श्री प्रकाश पुष्पा काबरा

ए-443, शास्त्री नगर, दिल्ली-52

संसकरण सप्तम–1000 प्रति

अक्षय तृतीया २०५४

८ मई, १९९७

मूल्य :

सप्रेम नित्य पाठ

भूमिका

प्रिय पाठकगण !

यह भूत भावन भूतेश भगवान् शङ्कर के महिम्नः स्तोत्र की सरल भाषा टीका सर्वसाधारण के समक्ष प्रस्तुत कर हम पूर्ण आशान्वित हैं कि इससे अल्प विद्या प्राप्त श्रद्धालु सज्जन भी पूरा लाभ उठा कर अपना जीवन कृतार्थ करेंगे। इस स्तोत्र के कितने ही श्लोक अर्थ गौरव और वेदान्त दर्शनों के रहस्यों से परिपूर्ण है, जिनके विषय में बहुत कुछ लिखा जा सकता है। इसके ३२ श्लोकों का अर्थ विष्णु पक्ष में भी पूर्णतया संघटित होता है। पर सर्व साधारण का अविषय एवं टीकावृद्धि की आशङ्का से उसका उल्लेख उपयुक्त न समझ कर केवल सीधा सादा अन्वयार्थ लिख देना ही समुचित समझा गया है। जिसमें श्लोकों का शब्दार्थ भी आ जाय और आबाल वृद्ध सभी सरलता से समझ भी सकें। बहुधा देखने में आया है कि सुप्रसिद्ध टीका-कारों ने केवल ३२ श्लोकों पर ही टीका की इति श्री की है फलस्तुति की नहीं। विचार में तो इसका प्रमुख कारण सरल समझ कर टीका-कारों ने उपेक्षा की है यही आ रहा है।

यह भाषा-भाष्य सत्सङ्ग प्रेमी सज्जनों के विशेष अनुरोध से ही किया गया है। आशुतोष भगवान् शिव उनकी इस भक्ति भाव-पूर्ण निष्ठा एवं विशुद्ध श्रद्धा को निश्चल कर उन्हें पूर्ण दीर्घायु तथा अखण्ड सुख शान्ति प्रदान करें।

"अनुस्वार" और "अनुनासिक" के विषय में पाठकों को अधिकांश आशङ्का बनी रहती है। हिन्दी भाषा में तो इसका कोई विशेष नियम नहीं पाया जाता पर संस्कृत के श्लोकों में अधिकतर अनुस्वार " ं " का प्रयोग "म" के ही स्थान में किया जाता है। पाठ करने वाले सज्जनों को यह बात भली भाँति समझ लेनी चाहिये और यथा साध्य अनुस्वार " ं " के स्थान में "म" का ही उच्चारण करना चाहिये।

इसके अतिरिक्त जहाँ कहीं मनुष्य स्वभाव सुलभ प्रमाद दोष अथवा यन्त्र दोष से त्रुटि रह गई हो उसे विज्ञ पाठक-वृन्द क्षमा प्रदान कर मुझे अनुग्रहीत करेंगे ऐसी आशा है। यदि यह सरलार्थ-भाषा-भाष्य किसी अश में भी सज्जन पाठकों को हृदयग्राही हुआ तो उसी से मैं अपने को पूर्ण कृत्यकृत्य एवं भगवान् शशिशेखर का परम प्रीति भाजन समझूँगा।

शिवपादपद्मानुरागी

रा० प्र० शा०
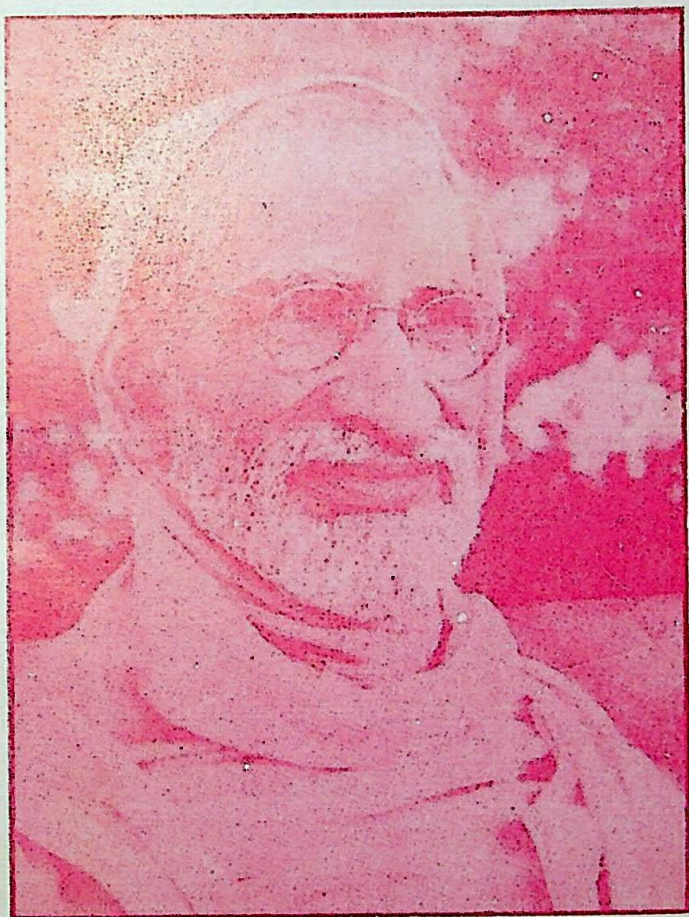
परम् ज्योतिष्मान्

श्री १००८ श्री गीता स्वामी जी महाराज

"दिशं तु शं मे गुरुपाद पांसवः"

श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्याणां श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठानां
स्वनामधन्यानां यतिवर्याणामनन्त विभूषित श्री १००८
सच्चिदानन्द सरस्वती स्वामि-गीतेत्युपनामधेयानामा-
राध्य गुरुवर्य महाभागानां पादपद्मयोः
विलसन्तुतराम् कमलेशानन्द सरस्वती
कृताऽनेका ॐ नमो नारायणायेति
साष्टाङ्ग दण्डवत्
प्रणामाञ्जलयः।

सच्चिदानन्द मन्दिर
दासमहावीर गीता भवन
मीरजापुर।

ॐ नमो ब्रह्मणे

नमोऽस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्तये
सहस्रपादाक्षिशिरोरु वाहवे
सहस्र नाम्ने पुरुषाय शाश्वते
सहस्र कोटि युगधारिणे नमः ।।

परब्रह्म परमातम भूतभावन भोलेश के इस लीलामय संसार में सर्व प्राणियों की स्वाभाविक प्रवृत्ति सुख शान्ति और उनके साधनों में प्रायः देखी जाती है। प्राणिमात्र का स्वाभाविक गन्तव्य जहाँ पहुँचकर वह अक्षय सुख शान्ति प्राप्तकर सकता है उसी का नाम हमारे शास्त्रों में अन्तर्यामी सच्चिदानन्द प्रभु कहा है वही निरतिशय सुखरूप भूमा है। प्राणी आपाततः बिना सोचे समझे देखे सुने सुख के लिए विषयों में आपही प्रवृत्त हो जाते हैं उनमें प्रारब्ध वशात् घुणाक्षर न्याय से किसी को लक्ष्य सिद्धि प्रतीत होती है परन्तु बिना विवेक विज्ञान के, निश्चय न होने से अनेक शङ्काओं में पड़े रहने के कारण अशान्ति सी बनी रहती है। इसके लिए विशिष्ट, सदाचारी, निष्कारण करुणावान महापुरुषों का संग, उनके अनुभूत साधनों तथा उपदेशों का श्रद्धा से श्रवण मनन निदिध्यासन की परम आवश्यकता है, अर्थात् शास्त्रोक्त मार्ग से (धर्म पूर्वक) चलने की आवश्यकता है।

फलतः जन्म जन्मान्तर की कायिक वाचिक मानसिक मलिनता के कारण हम में जो पशुत्व धर्म आ गया है, उसको दूर कर यह धर्म मानवता को प्रकट करेगा और मानवता से दैवीय सम्पदा को प्राप्त

करवाकर इसी सुमेरु रूप प्राप्त मानव शरीर में ही उसका साक्षात्कार हो जायेगा। अतः साधन धाम मोक्ष के द्वार इस मानव शरीर की सदुपयोगिता, अर्थात् उस विभु की मन, कर्म, वचन से सेवा आवश्यक है।

गन्धर्वराज पुष्पदन्ताचार्य जी द्वारा प्रणीत भूतभावन भोलेश भगवान् के शक्ति चिन्तन का यह सारगर्भित स्तोत्र है। साम्ब सदा शिव भक्त कुसुमदशनाचार्य जी की शक्ति, शिव निर्माल्योल्लङ्घन से कुण्ठित हो गई थी। आशुतोष भगवान् को इस 'शिवमहिम्नः स्तोत्र' के द्वारा ही प्रसन्न करके उनकी लक्ष्य सिद्धि हुई। वास्तविक यह सम्पूर्ण जड़चेतनात्मक विश्वप्रपञ्च भगवान् शिव का निर्माल्य है इसका उल्लङ्घन नित्य प्रति हमसे अज्ञान से हो रहा है कि परमात्मा की वस्तु को हम अपना समझ बैठे हैं और इससे दुःख पा रहे हैं। हमारी यह दुःखरूप दशा शिवनिर्माल्य उल्लङ्घन से ही हो रही है अतः श्रद्धा भक्ति पूर्वक नित्य इसके पाठ करने से हम भी अपने लक्ष्य सच्चिदानंद की प्राप्ति कर सकते हैं इसमें संदेह नहीं जैसा कि फल श्रुति से भी स्पष्ट लक्षित है कि—

अहरहनवद्यं धूर्जटेः स्तोत्रमेतत्
पठति परमभक्त्या शुद्धचित्तः पुमान् यः
स भवति शिव लोके रुद्रतुल्यस्तथात्र
प्रचुरतरधनायुः पुत्रवान् कीर्तिमांश्च ॥

अतः विवेकियों के विवेक और चतुराई की पराकाष्ठा इसीमें है कि वे इस विनाशी और असत्य शरीर से श्रद्धा आस्तिक्य द्वारा

शुद्धान्तःकरण से प्रेय की प्राप्ति के उद्गम श्रोत उस अविनाशी एवं सत्य तत्व सच्चिदानन्द श्रेय को प्राप्त करें।

प्रायः आशुतोष भगवान् के यजन पूजन प्रसाद ग्रहण करने आदि में लोगों में भेद बुद्धि बनी रहती है। उस भ्रान्ति के निवारण के लिए श्रुति स्मृति पुराणों का प्रमाण उद्धृत करके ब्रह्मलीन सद्गुरु श्री गीता स्वामी जी महाराज ने शंका समाधान उद्धरण देकर महान जन-कल्याण किया है—श्रुति वाक्य है कि—

अज्ञश्चाश्रद्धधानश्च संशयात्मा विनश्यति।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः॥

अतः पूज्यपादों ने अज्ञान जनित इस संशय का निवारण करके लोक को महती विनष्टि से बचाया है। हमें श्रद्धा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास भी है कि श्री गुरुपादपद्मानुरागी श्रद्धालु जन इसका अवलोकन कर अवश्य लाभ उठाकर इस अमूल्य मानव शरीर को कृतार्थ करेंगे।

श्री गुरुपादपद्मचञ्चरीक :—
कमलेशानन्दः
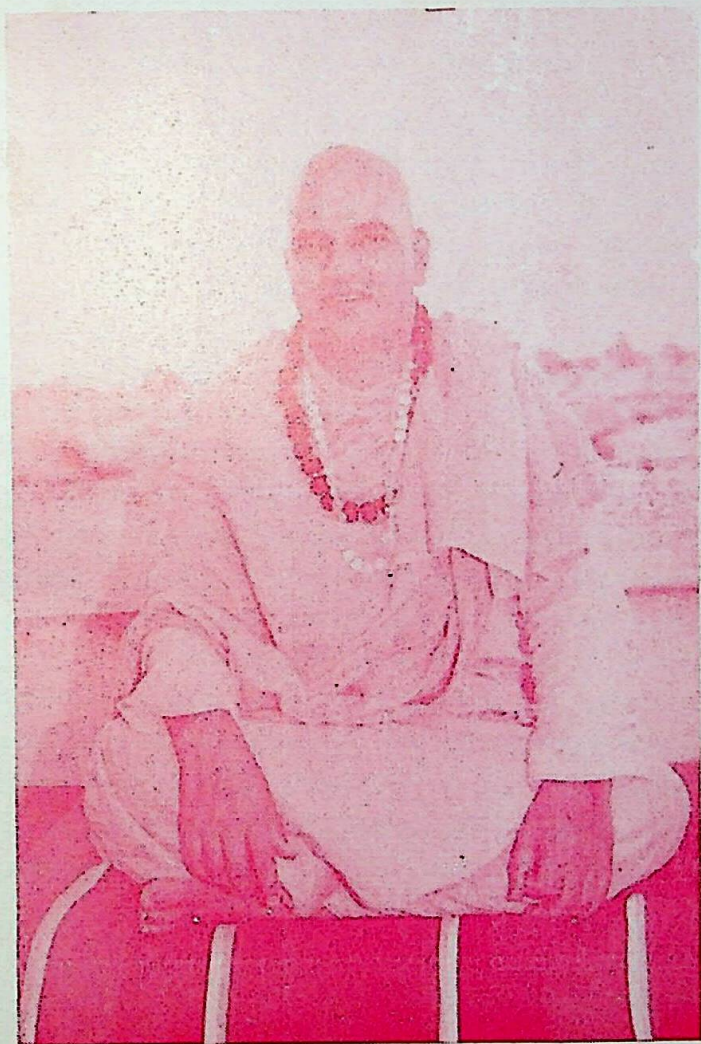
परमपूज्य सद्गुरू यतिवर्य महाराज

श्री स्वामी कमलेशानन्द जी सरस्वती

चिदाकाशमये स्वाङ्के विश्वालेख्य विदायिने
सर्वाद्भुतोभव भुवे नमः विषम चक्षुषे॥

परमप्रेमास्पद साम्ब अराधक भक्तों के सम्मुख धर्मार्थ काममोक्ष दायी फलों को प्रदान करने वाला परमतत्व परमेश्वर भगवान् शंकर के गुणों से महिमान्वित कैवल्य सच्चिदानन्द पद में नित्य प्रतिष्ठित करने वाला लौकिक पारलौकिक अखण्ड आनन्ददायी सार्थ शिवमहिम्न स्तोत्र आप लोगों तक पहुँचाते हुए हमें अपार हर्ष हो रहा है।

भगवत् भक्तों में शंकर भगवान् की पूजा अर्चना भोग प्रसाद सम्बन्धी अनेक शङ्काओं का निवारण करने वाला यह संस्करण काफी समय पहले समाप्त हो गया था। इसकी परम आवश्यकत्ता की पूर्ति हेतु परम प्रिय शिव भक्त दम्पति श्री प्रकाश सौ० पुष्पा देवी कावरा ने आर्थिक सहायता प्रदान कर इस कार्य को सम्पन्न करवाया। अतः इस शिव ज्ञान गंगा की सप्तम संस्करणरूप अजस्त्रधारा को सर्वभक्त सुलभ करवाने का श्रेय श्रीमान् कावरा दम्पति को जाता है। ये साधुवाद के पात्र हैं प्रभु इनको इस परमार्थ वृत्ति में अग्रसर रखते हुए इन्हें सुखशान्ति प्रदान करते हुए दार्धायु रखें। ''अनेन श्री गुरवः प्रीयन्ताम्'' परमा राध्य श्री गुरुदेव भगवान् की पावन जयन्ती अक्षय तृतीया विक्रमी सं० २०५४ के शुभावसर पर प्रकाशित यह धूर्जटी स्त्रोत प्रेमी पाठकों को शान्ति कैवल्य प्रदान करे।

ॐ शम्।

शुभेच्छु
स्वामी कमलेशानन्द सरस्वती
अक्षय तृतीया २०५४
९ मई १९९७

दो शब्द

श्री पुष्पदन्त प्रणीत "श्री शिव महिम्नः स्तोत्र तथा अन्य संग्रह" पुस्तक अनन्त विभूषित परिव्राजकाचार्य भगवत्पाद श्री सच्चिदानन्द सरस्वती "गीता स्वामीजी महाराज" के आशीर्वाद से लिखी गई है। लोक कल्याण को ध्यान में रखकर इस पुस्तक में महिम्नः स्तोत्र की महिमा, ध्यान तथा शङ्कासमाधान जैसे सारगर्भित अंशों को उन्होंने अपनी शब्द ब्रह्ममयी परावाणी को व्याकृत कर लिखा है। शास्त्र तात्पर्यानभिज्ञ भोली-भाली जनता का निष्कण्टक मार्गदर्शन शास्त्र-तत्वाभिज्ञ महान् मनीषी ही कर सकता है। श्री स्वामी जी वेदान्त-दर्शन के निष्प्रतिद्वन्द्वशास्त्राकाश में परम स्वतन्त्र होकर निर्द्वन्द्वभाव से विचरण करते थे इसलिए अपने विद्वद्भक्तों तथा परम श्रद्धालु सामान्य भक्तों के बीच उनके आत्मसाक्षात्कार के लिए समय-समय पर सगुण-मार्ग को राजवीथी से शास्त्र के निरुपम अवदानों का प्रतिपादन करते रहते थे। महिम्नः स्तोत्र बड़ी उच्चकोटि का दार्शनिक सिद्धान्तों से सम्पृक्त प्रसादमयी उपासना का स्तोत्र है। श्री स्वामी जी ने वैकुण्ठ भाव से अपने भक्तों के लिए उनके योग क्षेम तथा श्रेय प्रेय के सम्पादनार्थ इसे प्रसाद रूप में दिया है।

जीव सदैव आत्यन्तिक दुःख निवृत्ति पूर्वक ऐकान्तिक सुख का अन्वेषण करता रहता हैं जब तक आत्यन्तिक दुःख निवृत्ति पूर्वक ऐकान्तिक सुख की उपलब्धि नहीं होती तब तक वह व्यग्र रहता है क्रमशः वह आत्मोपलब्धि की दिशा में अग्रसर होता रहता है क्योंकि बन्ध निर्मुक्ति शास्त्राध्ययन, देवयजन आदि से ही मात्र नहीं हो पाती वह तो आत्मैक्यबोध से ही होती है।

भगवान् शङ्कराचार्य जी ने अपनी ऋतम्भरा प्रज्ञावाली वाणी में कहा है — आत्मैक्य वोधेन विना विर्मुक्तिर्नसिद्धयति ब्रह्मशतान्तरेऽपि। श्री गीता स्वामी जी महाराज द्वारा प्रर्वतित महिम्नः स्तोत्र के पाठ का निर्देश वन्ध निर्मुक्ति के लिए आत्मैक्य बोध का ही दिशा निर्देश है। यद्यपि आत्मा स्वतः सिद्ध है व्यवहार में इसकी प्रतीति होती रहती है परन्तु 'इदमित्थम्' उसका प्रत्यक्षीकरण नहीं हो पाता। हमारे दार्शनिक ग्रन्थों में इसी आतमसाक्षात्कार का रहस्यमय उद्घाटन किया गया है। शरीरात्मवादी शरीर को ही, अन्न को ही, आत्मा मानता है परन्तु अन्न तो ब्रह्म नहीं हो सकता आत्मा नहीं हो सकता क्योंकि अन्नमय शरीर जन्य है विनाशी है इसे आत्मा मानने पर अकृताभ्यागम एवं कृतप्रणाश दो दोष भी आ जाते हैं। प्राण भी आत्मा नहीं है क्योंकि वह चैतन्य नहीं है मन भी आत्मा नहीं है क्यों कि वह विकारी है विज्ञान भी आत्मा नहीं है क्योंकि उसका भी सुषुप्ति में लय हो जाता है, आनन्दमय कोष भी आत्मा नहीं है क्योंकि वह बुद्धिवृत्ति होनेसे स्थाई नहीं है तब फिर आत्मा क्या है–बृहदारण्यक का तत्व द्रष्टा ऋषि कहता है–आत्मा सर्वान्तर्यामी है–स्वयं अदृष्ट होकर सबका द्रष्टा है अमत होकर सबका मन्ता है। यह आत्मा "अपहत पाप्मा विजरो विमृत्युः" है। दुःख, शोक, मोह, जन्म, मरण से रहित है "सत्यं ज्ञान अनन्तम्" है, स्थूल सूक्ष्म कारण जगत और जाग्रत स्वप्न और सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओं में एक रूप में अवगत है अतः आत्मा है–फिर भी आत्मस्वरूप होकर भी जीव क्यों दुःखी है–संसारानल सन्तप्त है, सच्चिदानन्द स्वरूप होकर भी जीव क्यों विपन्न है? गोस्वामी तुलसीदास जी लिखते हैं कि—

असप्रभु हृदय अछत अविकारी । सकल जीव जग दीन दुखारी ॥

इस प्रकार साधनधाम मोक्षद्वार स्वरूप नरदेह को पाकर भी नरदेही अशान्त है । इस पर भगवान् शङ्कराचार्य लिखते हैं—

अव्यक्तनाम्नी परमेश शक्तिरनाद्यविद्या त्रिगुणात्मिकापरा ॥

परब्रह्म परमात्मा की अव्यक्त नामवाली अनादि रज, तम और सत्व गुणात्मिका अविद्या शक्ति है, यही सच्चिदानन्दघन परब्रह्म में जीव भाव की कल्पना कराती है, सम्पूर्ण अशान्तियों उद्वेगों का सृजन यही करती है ।

वेदान्तदर्शन के करुणाशील महात्माओं ने इसी अविद्या माया शक्ति का उच्छेदन करने के लिए, दुःख की वास्तविक निवृत्ति के लिए आत्मैक्य बोध का मार्ग प्रशस्त किया है जिससे जीव बन्ध विनिर्मुक्त हो सके ।

पूज्यपाद स्वामी जी ने आजीवन "अधीति बोधाचरण एवं प्रचारण" इन चारों मार्गों से बड़ी सहज पद्धति से भक्त जीवों के आत्मसाक्षात्कार का ही ज्ञानदीप जलाया था । अध्यात्म के आलोक से उनमें मनस्विता एवं आत्मतन्त्रता प्राप्त हुई थी वेदान्त को उन्होंने अपने जीवन में उतार लिया था इसलिए अपने चिन्तन में, प्रवचन में व्यवहारमें निर्भ्रान्त थे अदीनात्मा थे । शास्त्र और लोक दोनों विषयों में उनका दो टूक निर्णय होता था, उनकी प्रत्येक दिनचर्या शास्त्रीय प्रकाश से परिदीप्त थी यथेष्टाचरण करने वाला पण्डित उनसे कतराता रहता था अनुशास्ता की भाषा में वे कहा करते थे—

युद्धाद्वैत सत्तत्त्वस्य यथेष्टाचरणं यदि ।
शुनां तत्त्वदृशां चैव को भेदोऽशुचिभक्षणे ॥

भगवत्पाद स्वामी जी भारतवर्षं के गणमान्य यति प्रवरों में थे देशके विभिन्न अञ्चलों में उनके भक्त उनके ज्ञानालोक से सुकृतिशाली बने हुए हैं। मीरजापुर नगर एवं जनपद तो उनके उपदेशों, विचारों एवं तात्विक निर्देशों से अपने को धन्य मानता है। वे पूरे देश की विभूति होने के साथ–साथ मीरजापुर की अपनी सांस्कृतिक सम्पदा थे। उनके बिना ऐसा लगता है कि बहुत कुछ रीता हो गया है परन्तु उनका अध्यात्मदीप हमें सर्वदा भास्वर आलोक देता रहेगा।

कल्याणकामी जनता के लिए उसके आत्मसाक्षात्कार के लिए भगवत्पादने सगुण निर्गुण अनेक दिव्यमार्ग दिखाये थे जिनमें महिम्नः स्तोत्र का पाठ पारायण भी उनके द्वारा प्रवर्तित एक सगुण दिव्यमार्ग है। इसमें आशुतोष महेश्वर शंकर की स्तुति है परन्तु इसकी ऐसी वैदुष्यमयी वाङ्मयी संरचना हुई है कि एकसाथ इसमें भगवान् शंकर एवं भगवान् विष्णु दोनों का वैदुष्य पूर्ण संस्तवन है। श्री मधुसूदन सरस्वती ने शंकर एवं विष्णु दोनों अर्थों में इसकी व्याख्या की है। भारतीय धर्म साधना भेद से अभेद की ओर ही चली है। विभिन्न सम्प्रदायों मतमतान्तरों के इस देश में व्यष्टि से समष्टि की ओर भेद से अभेद की ओर, खण्ड से अखण्ड की ओर, चलने वाला मार्ग ही राजमार्ग कहा जाता है।

धर्म को विद्वद्वर्ग से लेकर सामान्य मानव तक पहुंचाने के लिए सबकी एकात्मता की प्रतिष्ठा के लिए यही अभेद सम्पादिका सांस्कृतिक मनोवृत्ति वरेण्य है। यही जनजन को एक दूसरे से जोड़ती भी है। भारतीय दर्शन ललित साहित्य पुराण एवं स्तोत्र साहित्य तक में भी यही अभेदोपासना विद्यमान है। दर्शन की वेद

की वाणी तो "एकं सद् विप्रा वहुधा वदन्ति" कहती ही आई है। भारत के सर्वश्रेष्ठ कवि कालिदास ने भी शंकर विष्णु एवं ब्रह्मा इन तीनों की एक ही मूर्ति अपनी ललितावाणी में वर्णित की है—

"एकैव मूर्तिर्विभिदे त्रिधासा सामान्यमेषां प्रथमावरत्वम्"

पुष्पदन्ताचार्य जी ने भी भारतीय साधना के इसी एकत्ववाद की ओर निर्देश किया है—

रुचीनां वैचित्र्यादृजु कुटिल नानापथ जुषाम्
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥

इसी तत्ववाद की एकत्व विधायनी समञ्जस प्रज्ञा के प्रकाश में विश्वकवि तुलसीदास ने अपने मानस में राम और शंकर की उपासना का समन्वय प्रस्तुत किया है।

श्री भगवत्पाद स्वामी जी महाराज ने भी अपने शंका समाधान वाले परिच्छेद में शंकर, विष्णु एवं परांम्बा भगवती की एकता का प्रतिपादन करने के लिए स्कन्दोपनिषद्, पद्मपुराण एवं श्रीमद्भागवत का उद्धरण देकर अपनी निर्भ्रान्त वाणी का प्रयोग किया है।

महिम्नः स्तोत्र एक ओर अपने पाठ से जनजन को रुद्रतुल्य बनने का श्रेयमय वरदान देता है धनधान्य, आयु, पुत्र, कीर्ति आदि की प्राप्ति का प्रेयमय वरदान देता है तो दूसरी ओर दार्शनिक सिद्धान्तों को भी अविकल रूप में प्रस्तुत करता है। सजातीय विजातीय तथा स्वगतभेद से शून्य एक अद्वितीय स्वप्रकाश भगवान् से भिन्न होकर कुछ भी नहीं है—इसी बात को व्यतिरेक मुखेन महिम्नः स्तोत्र में कहा गया है—

"किमीहः किं कायः स खलु किमुपायस्त्रिभुवनम्"

वाले श्लोकमें यही प्रतिपादित है। आधार के बिना उपादान के बिना शरीर के बिना चेष्टा के बिना जगत कैसे बन सकता है ? यह कुतर्क अतर्क्य ऐश्वर्य वाले कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थ भगवान में नहीं चल सकता उनकी अघटित घटनापटीयसी माया सब कुछ कर सकती है और स्वयं मिथ्या होकर भी उनकी सत्ता से सत्य होकर सत्य प्रपञ्च का निर्माण बिना आधार आदि के कर सकती है।

इसी तरह मनः प्रत्यक् चित्ते वाले श्लोक में "त्रयीं तिस्रो वृत्तीः" वाले श्लोक में तथा "नमोनेदिष्ठाय" जैसे कई श्लोकों में आध्यात्मिक स्तर पर ही शंकर की उपासना की गई है।

यह स्तोत्र उपासना का श्रेय-प्रेय सम्पादक दिव्य वाङ्मय है। इसकी बहुत सी उक्तियाँ परवर्ती भारतीय साहित्य के लिए उपजीव्य बन गई है। "हरिस्ते साहस्रं कमल वलिमादाय पदयोः" वाले श्लोक में भगवान् विष्णु ने शंकर की पूजा में हजार कमल चढ़ाने की विधि में एक कम हो जाने पर ९९९ कमल चढ़ाने के पश्चात् अपना एक नेत्रकमल ही चढ़ाकर हजार कमल चढ़ाने की उपासना पूरी की थी फलतः वे चक्रधारी बनकर आज भी त्रिलोकी की रक्षा करते हैं।

अभीष्ट की प्राप्ति के लिए कमल चढ़ाने वाले इस अवदान को बांगला रामायण के रचयिता कृत्तिवासने अपनाया है जिसमें माँ दुर्गा को प्रसन्न करने के लिए भगवान् राम ने १०८ कमल चढ़ाया था वहाँ भी एक कमल के न्यून पड़ने पर नील पत्राक्षी राम ने अपने नेत्रकमल को चढ़ा देने की निष्ठा अपनाई है—

भाविते भाविते राम करि लेन मने, नील पत्राक्षी मोरे बले सर्व जने।

राष्ट्रभाषा के आधुनिक कवि महाप्राण निराला ने भी महिम्नः

स्तोत्र के इस अवदान को ग्रहण कर अपनी "राम की शक्ति पूजा" में एक कमल की कमी पड़ जाने पर अपने राजीव नयन को चढ़ाने की राम वाली दुर्धर्ष सात्विक-निष्ठा का प्रकाशन किया है।

स्तोत्र साहित्य होने पर भी इसमें आलंकारिक सम्व्यूहन भी बड़ी दक्षता से हुआ है अर्थान्तरान्यास अलंकार के माध्यमसे तात्विक एवं व्यावहारिक सूक्तियों का विनियोग इसकी सारस्वत सम्पदा को उजागर करता है प्रबुद्ध मानव के लिए बड़ी मर्यादित आचार संहिता का विनियोग देखकर मुग्ध हो जाना पड़ता है, "प्रजानाथं नाथ:" इस श्लोक में ब्रह्माजी के अनाचार पर भगवान् शङ्कर का अनुशासन कितना ज्वलन्त है।

इस तरह स्पष्ट है कि महिम्न: स्तोत्र श्रेय प्रेय का साधन एवं भारतीय उपासना का अत्यन्त महनीय नैगमागमीय अमोघ स्तोत्र है। श्री अनन्त विभूषित भगवत्पाद स्वामी "गीता स्वामी जी" महाराज ने अपनी अपरिच्छिन्न चलने वाली प्रवचन परम्परा तथा इस स्तोत्र की निर्देशना से श्रद्धालु जनता का बड़ा कल्याण किया है। हम सब सर्वात्मना अकुण्ठभाव से उनकी इस अहैतुकी कृपा एवं उनके समर्थ अनुग्रह के प्रति कृतज्ञ हैं और सर्वदा कृतज्ञ बने रहेंगे। श्रीभगवत्पाद ने ब्रह्मलीन होने से पहले श्री स्वामी कमलेशानन्द जी को अपना सांस्कृतिक उत्तराधिकार देकर हम लोगों का शाश्वत उपकार किया है श्री अभिनव स्वामी जी महाराज को हम ॐ नमो नारायणाय अर्पित करते हैं।

विनीत—

कन्हैया लाल पाण्डेय
रीडर, अध्यक्ष हिन्दी विभाग
के.बी. स्नातकोत्तर महाविद्यालय
मीरजापुर

श्री महिम्नः स्तोत्र की महिमा

श्री महिम्नः स्तोत्र के रचयिता श्री गन्धर्वराज पुष्पदन्ताचार्य के विषय में यह निम्नाङ्कित इतिहास प्रचलित है।

पुष्पदन्ताचार्य नाम का एक गन्धर्वों का राजा था, जो शिव जी का अनन्य भक्त था। प्रतिदिन नियम से नियमित शिवार्चन वन्दन किया करता था। वह गन्धर्वराज दैवी शक्ति से अदृश्य होकर श्री प्रमोद नामक राजा के बाग से गुप चुप लुकछिप कर पुष्प ले जाया करता था। उसके इस दैनिक कृत्य को बाग के संरक्षक मालीगण समझ नहीं पाते थे। एक दिन बिहार प्रिय राजा के अकस्मात बाटिका में आकर पुष्पों की न्यूनता का कारण पूछने पर संरक्षकों ने उत्तर दिया कि राजन्! यद्यपि हम लोग नित्यप्रति अहर्निशि बाटिका की रक्षा में पूर्ण सावधान और तत्पर रहते हैं तथापि न तो पुष्पों का टूटना बन्द होता है और न पुष्पहर का कुछ पता ही चलता है। राजा था परम विवेकवान्। विचार करने लगा कि हो न हो किसी देव या गन्धर्व का यह कृत्य हो। अतः जब तक उसकी शक्ति कुण्ठित न की जाय, पुष्पों की चोरी बन्द होनी सम्भव नहीं। इसी उद्देश्य से राजा ने पुष्पहरण होने वाले मार्ग की ओर विल्वपत्र, पुष्प जल आदि शिव निर्माल्य छोड़वा दिया। दूसरे दिन गन्धर्वराज ने ज्यों ही बाटिका में प्रवेश किया त्योंही शिवनिर्माल्योल्लङ्घन के अपराध से उसकी स्वभाव सिद्ध दैवी शक्ति क्षीण हो गई और वह पूर्ववत् उड़ न सका।

अर्थ—शिव तत्वैक निष्ठ पार्वती भगवान् शिव की पतिरूप प्राप्ति के लिये जब घोर तप करने लगीं तब स्नेहकातरा मेनका से नहीं रहा गया। वे बोल उठीं, "उ" (वत्से) "मा" (ऐसा तप मत करो)।' अतः उसी दिन से उनका नाम उमा पड़ गया। उमा का ही दूसरा नाम "ब्रह्मविद्या" भी है।

मैं उमा "ब्रह्मविद्या" के पति देवताओं के गुरु महादेव जी को वंदन करता हूँ। जगत के अभिन्न निमित्तोपादान कारण (महेश्वर) को वंदन करता हूँ। सर्पों के आभूषणधारी मृगधर शङ्कर को वंदन करता हूँ। पाश-वद्ध जीवों के रक्षक (पाश-मुक्त करने वाले) शिव को वंदन करता हूँ। सूर्यवत् अज्ञान-तमोनाशक, चंद्रमा के समान आह्लादक, अग्नि की भाँति राग द्वेषादि दोष नाशक; सूर्य चंद्र और अग्निरूप तीन नेत्र वाले शङ्कर को वंदन करता हूँ। श्री मुकुन्द भगवान् विष्णु के प्रिय को अथवा मुकुन्द है प्रिय जिसे उसको वंदन करता हूँ। भक्त-जनों के एकमात्र आश्रय और वर देकर निहाल कर देने वाले को वंदन करता हूँ। तथा प्राणी मात्र का कल्याण करने वाले शिव को वंदन करता हूँ ॥२॥

कर्पूर गौरं करुणावतारं
संसार सारं भुजगेन्द्रहारम् ।
सदा वसन्तं हृदयारविन्दे;
भवं भवानी सहितं नमामि ॥३॥

अर्थ—कर्पूर के समान गोरे, करुणा के अवतार, असार संसार में सारभूत, महाविषधर शेषनाग को धारण करने वाले (भाव यह कि जीवन्मुक्त के सान्निध्य में विरुद्ध स्वभाव के भयङ्कर प्राणी भी प्रतिकूलाचरण छोड़कर सदा अनुकूल ही बने रहते हैं)। हृदय-कमल में भवानी पार्वती के सहित निरन्तर निवास करने वाले, शिव जी को नमन करता हूँ ॥३॥

योऽन्तः प्रविश्य मम वाचमिमां प्रसुप्तां;
सञ्जीवयत्यखिलशक्तिधरः स्वधाम्ना ।
अन्यांश्च हस्त चरण श्रवण त्वगादीन्;
प्राणान्नमो भगवते पुरुषाय तुभ्यम् ॥४॥

अर्थ—जो सर्व शक्तिमान परमात्मा हृदय में प्रविष्ट होकर इस सोती हुई वाणी को तथा अन्य हाथ, पैर, कान त्वगादि समस्त इन्द्रियों और प्राणों को अपने प्रभाव से ही जीवित करता है। अर्थात् अखिल जड़-वर्ग को चेतन करता है, उस सर्वान्तर्यामी भगवान् परम पुरुष आत्मदेव के लिये नमस्कार है ॥४॥

"इति ध्यानम्"

* अथ श्री शिव महिम्नः स्तोत्रम् *

ॐ गजाननं भूत गणाधिसेवितं;
कपित्थ जम्बूफल चारु भक्षणम् ।
उमासुतं शोक विनाशकारकं;
नमामि विघ्नेश्वर पादपङ्कजम् ॥

अर्थ—भूतगणों द्वारा स्व स्व अधिकारानुसार सेवित, कैथा और जामुन के उत्तम फलों के भक्षण करने वाले, शोक समूह के नाशक, जिनके चरण कमल ही विघ्नों के निवारक हैं, उन पार्वती-पुत्र गजमुख श्री गणेश जी को सतत नमस्कार करता हूँ ।

अनन्त अपार भगवान् शिव की महिमा सर्वथा अवर्णनीय है। इस भाव को प्रदर्शित करते हुये श्री पुष्पदन्त जी स्तुति करते हैं।

"श्री पुष्पदन्त उवाच"

महिम्नः पारं ते, परमविदुषो यद्यसदृशी;
स्तुतिर्ब्रह्मादीनामपितदवसन्नास्त्वयिगिरः ।
अथाऽवाच्यः सर्वः, स्वमतिपरिणामावधि गृणन्;

ममाप्येषः स्तोत्रे; हरनिरपवादः परिकरः ॥१॥

अन्वय—हर ! ते महिम्नः परम् पारम् अविदुषः स्तुतिः यदि असदृशी (स्यात्) तत् (तर्हि किं चित्रम् कुतः) ब्रह्मादीनाम् अपि गिरःत्वयि अवसन्नाः। अथ सर्वः स्वमतिपरिणामावधि गृणन् अवाच्यः (तर्हि) मम अपि स्तोत्रे एषः (महिम्नः स्तोत्र निर्माण रूपः) परिकरः निरपवादः।

अर्थ—हे पाप-ताप हारी महादेव जी ! आपकी अमायिक महिमा को पूर्णरूप से न समझने वाले अल्पज्ञों द्वारा की गई भवदीय स्तुति यदि यथातथ्य न हो तो (आश्चर्य क्या ? क्योंकि) ब्रह्मा आदि सर्वज्ञों की भी स्तुतिरूपावाणी आपके लिये योग्य नहीं। और यदि सभी प्रार्थी अपने-अपने बुद्धि बल के अनुरूप स्तुति करने पर निर्दोष हैं तब तो मेरा भी आपकी स्तुति करने में यह (शिव महिमा की स्तोत्र-रचना-रूप) प्रयत्न कलङ्क कालिमा रहित ही है। किसी प्रकार भी निन्दनीय हो नहीं सकता ॥१॥

परम प्रवीण गन्धर्वराज जी, पूर्व-श्लोक में ब्रह्मादिकों के समान सभी को स्वबुद्धि के अनुसार आपकी स्तुति करने का पूर्ण अधिकार है, इस बात को युक्ति पूर्वक सिद्ध करके पुनः स्तुति करने लगे।

अतीतः पन्थानं, तव च महिमा वाङ्मनसयो;
रतद्व्यावृत्त्या यं, चकितमभिधत्ते श्रुतिरपि।

स कस्य स्तोतव्यः, कतिविधगुणः कस्य विषयः;
पदे त्वर्वाचीने, पतति न मनः कस्य न वचः ॥२॥

अन्वय—हे हर! तव महिमा वाङ्मनसयोः च पन्थानम् अतीतः। यम् श्रुतिः अपि अतद्व्यावृत्या चकितम् अभिधत्ते। सः कस्य स्तोतव्यः कतिविधगुणः कस्य विषयः। अर्वाचीने पदे तु कस्य मनः न पतति वचः नाविशति (अपि तु सर्वस्य मनः वचश्च आविशत्येव।)

अर्थ—हे हर! तेरा महात्म्य तो वाणी और मन के मार्ग से परे है, जिसको वेद भी भागत्याग लक्षणादि के द्वारा विस्मित होता हुआ प्रतिपादन करता है। वह किसके स्तुति योग्य है, कितने प्रकार के गुणों वाला है, किसका विषय है (भाव यह कि सगुण परमात्मा अनन्त गुणों वाला होने से और निर्गुण इन्द्रियातीत होने के कारण किसी का विषय न होने से सर्वथा अस्तुत्य है तथापि हे भक्ताधीन भोलेनाथ! आप के) नवीन साकार रूप में तो किसका मन रमना और वाणी वर्णन करना नहीं चाहती (प्रत्युत सभी के मन वाणी का वलात् प्रवेश हो ही जाता है)।

एवं सगुण परमात्मा के गुणों की अनन्तता और निर्गुण परमात्मा के मन, बुद्धि, वाणी की अविषयता के कारण स्वकृत स्तुति की निष्फलता का प्रसङ्ग आजाने से गन्धर्वराज पुनः स्तुति की सफलता दिखाते हुये बोले :—

मधुस्फीता वाचः परमममृतं निर्मितवत—
स्तव ब्रह्मन् किं वागपि सुरगुरोर्विस्मयपदम् ।
मम त्वेतां वाणीं गुणकथनपुण्येन भवतः
पुनामीत्यर्थेऽस्मिन्पुरमथनबुद्धिर्व्यवसिता ॥३॥

अन्वय—हे ब्रह्मन् ! मधुस्फीता परमम् अमृतम् वाचः निर्मितवतः तव सुरगुरोः अपि वाक् किम् विस्मयपदम् तु पुरमथन (अहम्) एताम् वाणीम् भवतः गुणकथनपुण्येन पुनामि। इति अस्मिन् अर्थे मम बुद्धिः व्यवसिता।

अर्थ—हे साक्षात्परब्रह्म परमात्मन् ! मधुमिश्रित परम अमृतमयी वेदवाणी को रचने वाले आप को देव गुरु (वृहस्पति जी) की भी वाणी क्या ? विस्मयावह हो सकती है; (कभी नहीं।) फिर भी हे त्रिपुरारि ! (मैं तो) इस वाणी को आपके गुण-गान रूप पुण्य से पावन कर लूं इस दृष्टि से ही इस स्तुति कार्य में मेरी बुद्धि उद्यत हुई है ॥३॥

इस प्रकार शिवजी की स्तुति करने में अपनी योग्यता और अव्यर्थता का निरूपण करके परमेश्वर के सद्भाव में होने वाले वादों का खण्डन करते हुए पुष्पदन्त जी कहने लगे—

तवैश्वर्यं यत्तज्जगदुदयरक्षाप्रलयकृत् ;
त्रयीवस्तु व्यस्तं तिसृषु गुणभिन्नासु तनुषु ।

अभव्यानामस्मिन् वरद रमणीयामरमणीं;
विहन्तुं व्याक्रोशीं विदधत इहैके जड़धियः ॥४॥

अन्वय—वरद ! जगदुदयरक्षाप्रलयकृत, त्रयीवस्तु, गुणभिन्नासु, तिसृषु तनुषु व्यस्तम् यत् इह तव ऐश्वर्यम् तत्विहन्तुं एके जड़धियः, अभव्यानाम् रमणीयाम् अरमणीम् अस्मिन् व्याक्रोशी विदधते।

अर्थ—हे वर देने वाले शम्भो ! जगत की उत्पत्ति, पालन और संहार करने वाला तीनों वेदों द्वारा वस्तु रूप से प्रतिपाद्य गुणों के भेद से भिन्न ब्रह्मा, विष्णु, महेश रूप तीन शरीरों में विभक्त हुआ जो इस ब्रह्माण्ड में आपके ऐश्वर्य, उसका खण्डन करने के लिये कितने ही मतिमन्द (नास्तिक जन) मन्दभाग्यों को तो अच्छी लगने वाली पर वस्तुतः अशोभन, आपके ऐश्वर्य के विषय में मिथ्या आक्षेपपूर्ण चीं पों मचाते रहते हैं ॥४॥

अब उन जड़ बुद्धियों की चीं पों का आदर्श दिखाते हुये गन्धर्वराज स्तुति करते हैं।

किमीहः किं कायः स खलु किमुपायस्त्रिभुवनं;
किमाधारो धाता सृजति किमुपादान इति च।
अतर्क्यैश्वर्ये त्वय्यनवसरदुःस्थो हतधियः;

कुतर्कोऽयं कांश्चिन्मुखरयति मोहाय जगतः ॥५॥

अन्वयः—वरद ! सः धाता खलु किमाधारः, किमीहः, किंकायः, किमुपायः च किमुपादानः (सन्) त्रिभुवनम् सृजति। इति अयं कुतर्कः अतर्क्यैश्वर्ये त्वयि अनवसर दुःस्थः (अपि) जगतः मोहाय काँश्चित् हतधियः मुखरयति ॥

अर्थ—हे वरद ! (त्रिभुवन निर्माण के समय) वह जगत्स्रष्टा विधाता निश्चय ही किस आधार पर बैठकर, किस कामना से, किस शरीर से, किन साधनों से, और किन कारणों से (पदार्थों से) तीनों लोकों का सर्जन करता है। ऐसा यह कुतर्क, निस्तर्क ऐश्वर्य-शाली आपके सम्बन्ध में लेशमात्र अवसर न पाते हुये भी संसार को मोहित करने के लिये कितने ही बुद्धि हीनों को वाचाल बनाता रहता हैं ॥५॥

इस प्रकार कुतर्क का परिहार और यथार्थ तर्क का निरूपण करते हुये पुष्पदन्त जी पुनः स्तुति करने लगे।

अजन्मानो लोकाः किमवयववन्तोपि जगता;—
मधिष्ठातारं किं भवविधिरनादृत्य भवति ।
अनीशो वा कुर्याद्भुवनजनने कः परिकरो;
यतो मन्दास्त्वां प्रत्यमरवर संशेरत इमे ॥६॥

अन्वयः—अमरवर ! इमे लोकाः अवयववन्तः अपि किम् अजन्मान (सन्ति) किम् भवविधिः जगताम् अधिष्ठातारम्

अनादृत्य भवति। वा अनीशः कुर्यात्। भुवन जनने कः परिकरः ? यतः मन्दाः त्वाम् प्रति संशेरते ॥६॥

अर्थ—हे सुर श्रेष्ठ महादेवजी ! ये चौदहों लोक१ सावयव होने पर भी क्या ? अजन्मा ही हैं। और क्या ? सृष्टि रचना२ लोकों के रचयिता की अपेक्षा बिना ही होती है। यदि ईश्वर से भिन्न सामर्थ्य हीन कोई कर्त्ता हो तो भुवनों के उत्पन्न करने में उसके पास क्या सामग्री है ? क्योंकि मन्द भाग्य और मन्दमति जन आपके प्रति सन्देह करते रहते हैं ॥६॥

यहाँ तक भगवदविमुख कुतर्क वादियों का खण्डन करके वेद वेदाङ्ग तथा षट् दर्शनों के तात्पर्य की परिसमाप्ति सर्वतो भावेन साक्षात् अथवा परम्परा से परमात्मा में ही है इसका विवेचन करते हुये गन्धर्वराज स्तुति करते हैं।

१—तल; अतल; वितल; सुतल; तलातल; रसातल; पाताल; भूलोक; भुवर्लोक; स्वर्गलोक; महर्लोक; जनोलोक; तपोलोक; सत्यलोक ये चौदह लोक हैं।

२—"यथोपादानंमृत्तदनु सहकारीह लगुड़ो; जलं चक्रं सूत्रं तदनुजड़वर्गोऽयमखिलः नयत्नं कौलालं प्रभवति बिना कुम्भ घटने; तथाधिष्ठातारं न भवतिबिना त्वां भवविधि ॥

अर्थात् जिस प्रकार—उपादान भूता मिट्टी, डंडा, जल, चाक, तथा डोरी आदि जड़ पदार्थों का समुदाय कुम्हार के प्रयत्न बिना घड़ा बनाने में समर्थ नहीं होता ठीक उसी प्रकार अधिष्ठाता आप के बिना सृष्टि रचना सर्वथा असम्भव है।

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति;
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च ।
रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां
नृणामेकोगम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥७॥

अन्वयः—अमरवर ! त्रयी सांख्यम् योगः पशुपति मतम् वैष्णवम् इति प्रभिन्ने प्रस्थाने इदम् परम च अदः पथ्यम् इति रुचीनाम् वैचित्र्याद् ऋजुकुटिलनानापथजुषाम् नृणाम् पयसाम् अर्णवः इव त्वम् एकः गम्यः असि ॥७॥

अर्थ—हे सुर श्रेष्ठ ! तीनों[१] वेद, सांख्यशास्त्र, योगशास्त्र, पाशुपत शास्त्र, वैष्णवमत इत्यादि विभिन्न मार्गों (मतान्तरों) में से यह (हमारा मत) परमोत्तम है और (दूसरे की अपेक्षा) यह मत साक्षात् मोक्षप्रद होने से परम पथ्य (हितकर) है । इस प्रकार रुचियों की विचित्रता से सीधे-टेढ़े अनेक मार्गों के अनुयायी मनुष्यो को अनेक ऊबड़-खाबड़ मार्गों से प्रवाहित होने वाली जल राशि को समुद्र के समान आप ही एक मात्र प्राप्त करने योग्य हैं; अर्थात् जैसे कहीं से भी अवाध्य गति से प्रवाहित होने वाला जल समुद्र को ही प्राप्त करता है ठीक उसी प्रकार किसी भीं सम्प्रदाय से चलने वाला तीव्र जिज्ञासु एक आप (शिवजी) को ही प्राप्त होता है । यदि थककर लौटे नहीं तो ।

१—त्रयी और सांख्य शब्द से यहाँ अठारह १८ विद्यायें उपलक्षित हैं। जिनमें ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद ये

उपर्युक्त विधि से सभी मत मतान्तरों तथा शंकाओं के समाधान पूर्वक शिवजी के स्वरूप का निरूपण करते हुये नूतन सगुण रूप में विद्यमान परमात्मा की पुष्पदन्त जी स्तुति करते हैं ।

महोक्षः खट्वाङ्गं परशुरजिनं भस्म फणिनः;
कपालं चेतीयत्तव वरद तन्त्रोपकरणम् ।
सुरास्तां तामृद्धिं दधति तु भवद्भ्रूप्रणिहितां;
न हि स्वात्मारामं विषयमृगतृष्णा भ्रमयति ॥८॥

अन्वयः—वरद ! महोक्षः, खट्वाङ्गम्, परशु, अजिनम्, भस्म, फणिनः, च कपालम् इति इयत् तव तन्त्रोपकरणम् । सुराः ताम्-ताम् ऋद्धिम् भवदभ्रू प्रणिहिताम् दधति । तु हि स्वात्मारामम् विषयमृगतृष्णा न भ्रमयति ॥ ८ ॥

चारों वेद शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष ये ६ वेदाङ्ग । पुराण, न्याय, मीमांसा और धर्मशास्त्र ये ४ उपाङ्ग । यहाँ उपपुराणों का पुराणों में ही अन्तर्भाव है । यथा-वैशेषिक शास्त्र का न्याय में, वेदान्त का मीमांसा में, महा-भारत, रामायण, सांख्य, योग, पाशुपत, और वैष्णव आदि का धर्मशास्त्रों में अन्तर्भाव है । इस प्रकार सब मिलाकर १४ विद्याएँ हैं । इन्हीं में आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्ववेद और अर्थवेद ये चार उपवेद मिला देने से १८ विद्याओं का ग्रहण होता है ।

अर्थ—सर्वथा अप्राप्य सर्वोत्तम पदार्थ प्रदान कर मालामाल वना देने वाले हे वरद प्रभो! (सवारी के लिए) बूढ़ा बैल (गृह सजाने की सामग्रियों में एक मात्र) खाट का पावा (धूनी रमाने की लकड़ी फाड़ने को धार हीन गोठिल) फरसा (गोप्य अङ्गों के लिए एक जीर्ण शीर्ण) मृगछाला या बाघम्बर (शरीर में उपलेपनार्थ चिता की) राख (आभूषणों के स्थान में फण वाले विषधर नाग और (भिक्षा पात्रों में केवल) नर कपाल यह उपर्युक्त इतनी ही आपके कुटुम्ब पालन की सामग्री है। परन्तु देव वृन्द उस उस (अलौकिक) समृद्धि को आपके कृपा कटाक्ष से ही प्राप्त कर स्वेच्छानुसार स्वतन्त्र उपभोग करते हैं (तो फिर आप भिक्षुक बन मारे-मारे क्यों फिरते हैं) इससे यही सुनिश्चित हो रहा है कि स्व-स्वरूपभूत आत्मा में ही रमण करने वाले को विषयों की मृग-तृष्णा भ्रम में नहीं डाल सकती ॥ ८॥

यहाँ तक शिव स्वरूप का वर्णन करके अब स्तुति के विभिन्न प्रकारों का कथन करते हुए गन्धर्वराज कहते हैं।

१— वस्तुतस्तु— "पुरुष— प्रकृति — महत्तत्व — अहङ्कार तन्मात्रा—इन्द्रियाँ और महाभूत ही" सातो महोक्षादि रूप में भगवान महादेव की गुप्त रूप से उपासना कर रहे हैं। समस्त विश्व ही जिसका कुटुम्ब है ऐसे उस आत्मदेव बोधस्वरूप शिव के सातों तत्व उपकरण हैं। यह निष्कर्ष है।

ध्रुवं कश्चित्सर्वं सकलमपरस्त्वध्रुवमिदं;
परो ध्रौव्याध्रौव्ये जगति गदति व्यस्तविषये ।
समस्तेऽप्येतस्मिन्पुरमथन तैर्विस्मित इव,
स्तुवन् जिह्रेमि त्वां न खलु ननु धृष्टा मुखरता ॥९॥

अन्वय:—पुरमथन ! कश्चित् इदम् सर्वम् ध्रूवम् गदतिं, अपरः इदम् सकलम् अध्रुवम् गदति; तु परः ध्रौव्या ध्रौव्ये जगति व्यस्त-विषये एतस्मिन् समस्ते विस्मितः इव अपि तैः त्वाम् स्तुवन् न जिह्रेमि तनु मुखरता खलु धृष्टा ॥ ९ ॥

अर्थ—हे त्रिपुरांतक ! कोई सांख्यवादी इस नाम रूप वाले समस्त (लोकों) को नित्य कहता है। दूसरा कोई बौद्ध इन सबको अनित्य कहता है। और कोई अन्य (नैयायिक) नित्यत्व अनित्यत्व का विषय विश्व में विभक्त (अर्थात् सावयव पदार्थ स्थूल रूप से अनित्य और निरवयव सूक्ष्म परमाणुओं को नित्य) मानता है । इन सभी मतवादों में आश्चर्य चकित सा होकर भी (मैं) उन मतान्तरों के द्वारा आपका स्तवन करता हुआ लज्जित नहीं होता । सचमुच वाचालता ही ढीठ होती है । अर्थात् मैं वाचालता वश पूर्वापर विचार शून्य निर्लज्जवत् मनमानी बकबक कर रहा हूँ ।

इतर प्राणियों की तो बात ही क्या ? आपका साक्षात्कार सृष्टि-कर्ता ब्रह्मा, तथा विश्व-प्रतिपालक विष्णु को भी आपके अनुग्रह से ही हुआ है। इस अभिप्राय को लेकर श्री पुष्पदन्त जी कहते हैं कि —

तवैश्वर्यं यत्नाद्यदुपरि विरिञ्चिर्हरिरधः
परिच्छेत्तुं यातावनलमनलस्कन्धवपुषः ।
ततो भक्तिश्रद्धाभरगुरुगृणद्भ्यां गिरिश यत्,
स्वयं तस्थे ताभ्यां तव किमनुवृत्तिर्न फलति ॥१०॥

अन्वयः—गिरिश ! अनलस्कन्धवपुषः तव यत् ऐश्वर्यम् परिच्छेत्तुम् विरिञ्चिः उपरि, हरिः अधः यत्नात् यातौ (किन्तु)अनलम्। ततः भक्तिश्रद्धाभरगुरुगृणद्भ्याम् ताभ्याम् स्वयम् तस्थे । तव अनुवृत्तिः किम न फलति ॥ १० ॥

अर्थ—हे गिरिश ! (देदीप्यमान) अग्नि के खम्भा सा प्रकाशमय देह वाले आप के जिस ऐश्वर्य को थहाने के लिए ब्रह्मा ऊपर की ओर तथा भक्त भय भञ्जक हरि नीचे की ओर पूर्ण प्रयत्न से गये पर पार न पा सके। तदनन्तर भक्ति एवं श्रद्धा के भार से विनम्र हो विशाल स्तुति करते हुए वे दोनों हरि ब्रह्मा (आपके ज्योतिर्लिङ्ग के समक्ष) चुपचाप खड़े हो गये* (तव सामर्थ्य विहीन उनकी अनन्यता पर रीझ कर आपने वाद 'रहित अपने शुद्ध स्वरूप का साक्षात्कार कराया) (हे भोले भण्डारी) आपका अनुसरण क्या फल नहीं देता ॥१०॥

---

*एक बार ब्रह्मा और विष्णु का "हम दोनों में कौन बड़ा है" इस विषय पर विवाद चल पड़ा। भक्त पराधीन भगवान् भोलेश ने उनके समक्ष लिङ्गाकार ज्योतिः स्वरूप में प्रकट हो उन पर अनुग्रह करते हुए दोनों के वाद का निर्णय किया। इस कथा का ही इस दशवें श्लोक में संक्षिप्त वर्णन है ॥१०॥

अब रावण नामक असुर पर भी आपका अनुग्रह दिखाते हुये गन्धर्वराज स्तुति करते हैं।

अयत्नादापाद्य त्रिभुवनमवैरव्यतिकरं,
दशास्यो यद्बाहूनभृत रणकण्डूपरवशान् ।
शिरः पद्मश्रेणीरचित चरणाम्भोरुहबलेः,
स्थिरायास्त्वद्भक्तेस्त्रिपुरहर विस्फूर्जितमिदम् ॥११॥

अन्वयः—त्रिपुरहर ! यत दशास्यः त्रिभुवनम् अयत्नात अवैरव्यतिकरम् आपाद्य रणकण्डूपरवशान् बाहून् अभृत इदम् शिरःपद्मश्रेणीरचितचरणाम्भोरुहबलेः स्थिरायाः त्वद्भक्तेः विस्फूर्जितम् । इदम् ।

अर्थ—हे स्थूल सूक्ष्म कारण रूप तीनों शरीरों को हर लेने वाले अथवा तीनों में तद्रूप हुये जीव भाव रूप त्रिपुरासुर के संहारक शंकर ! जो दशमुख रावण भूर्भूवः स्वः तीनों लोकों को बिना प्रयत्न के ही निष्कण्टक बनाकर युद्ध की अशान्त खाज से विवश बीसों भुजाओं को धारण किये रहा। यह 'आपके' पाद पद्मों में मस्तक रूपी कमल की पंक्तियों से विरचित मालाओं की भेंट द्वारा की गयी निश्चल आपकी भक्ति का ही तो प्रभाव है ॥११॥

इस प्रकार भक्ति प्रिय भगवान् का उत्कट भक्ति-भाव वाले रावण पर पूर्ण अनुग्रह झलका कर गर्व करने से उसी रावण पर भगवान् का निग्रह दिखाते हुए पुष्पदन्त जी कहते हैं।

अमुष्य त्वत्सेवासमधिगतसारं भुजवलं,
बलात् कैलासेऽपि त्वदधिवसतौ विक्रमयतः ।
अलभ्या पातालेऽप्यलसचलिताङ्गुष्ठशिरसि,
प्रतिष्ठा त्वय्यासीद्ध्रुवमुपचितो मुह्यति खलः ॥१२॥

अन्वयः—त्रिपुरहर ! त्वदधिवसतौ कैलासे अपि त्वत्सेवासमाधिगतसारम्; भुजबलम् बलात् विक्रमंयतः अमुष्य त्वयि अलसचलिताङ्गुष्ठशिरसि पाताले अपि प्रतिष्ठा अलभ्या आसीत् । ध्रुवम् खलः उपचितः मुह्यति ॥१२॥

अर्थ—हे त्रिपुरहर ! आपके निवास स्थान कैलाश पर ही आप की सेवा द्वारा प्राप्त शक्ति वाली भुजाओं के बल की हठात् (घमण्ड से) परीक्षा करने वाले रावण को आपके थोड़ी सी अंगूठे की नोक के सञ्चार से ही पाताल में भी प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं हुई । यह ध्रुव सत्य है कि खल मनुष्य उन्नति पाकर मोह में फँस जाता है और उन्नति के अभिमान में उपकार को भूल जाता है ।

अहंकारी रावण पर भगवान् का निग्रह दिखाकर अत्यन्त अवनत इन्द्र और वाणासुर पर भगवान् का अनुग्रह दिखाते हुये गन्धर्वराज पुनः स्तुति करते हैं ।

यद्‌र्द्धिं सुत्राम्णो वरद परमोच्चैरपि सती,

मधश्चक्रे बाणः परिजन विधेय त्रिभुवनः ।

न तच्चित्रं तस्मिन् वरिवसितरि त्वच्चरणयो-
र्नकस्याप्युन्नत्यै भवति शिरसस्त्वय्यवनतिः ॥१३॥

अन्वयः—वरद! यत् परिजनविधेयत्रिभुवनः बाणः परमोच्चैः सतीम् अपि सुत्राम्णः ऋद्धिम् अधः चक्रे तत् त्वच्चरणयोः वरिवसितरि तस्मिन् चित्रम् न। त्वयि शिरसः अवनतिः कस्य उन्नत्यै न भवति अपि (तु सर्वस्य उन्नत्यै भवति)।

अर्थ—हे अवढर दाता भोले बाबा! जिन तीन लोकों को दास के समान स्ववश करने वाले बली बाणासुर ने अत्यन्त चढ़ी बढ़ी हुई भी त्रिवभुनाधिप इन्द्र की सम्पत्ति को नीची कर डाला (अर्थात् तिरस्कृत किया) उस आपके चरणों में सेवक रूप से निवास करने वाले अथवा नमस्कार करने वाले बाणासुर में कोई आश्चर्यजनक बात नहीं। (क्योंकि) आपके सामने शिर का झुकाना किसकी उन्नति के लिये नहीं होता। (किन्तु सबकी उन्नति के लिये होता है) अर्थात् सबको उन्नतिशील बनाता है ॥१३॥

यहाँ कालकूट विष के संहार का वर्णन करते हुये गन्धर्वराज जी भगवान् शिव की स्तुति करते है।

अकाण्डब्रह्माण्डक्षयचकितदेवासुर कृपा,
विधेयस्यासीद्यस्त्रिनयन विषं संहृतवतः।
स कल्माषः कण्ठे तव न कुरुते न श्रियमहो,
विकारोऽपि श्लाघ्यो भुवनभयभङ्गव्यसनिनः ॥१४॥

अन्वयः—त्रिनयन ! अकाण्डब्रह्माण्डक्षयचकितदेवासुर-कृपाविधेयस्य विषं संहृतवतः तव कण्ठे यः कल्माषः आसीत् सः श्रियं न कुरुते (इतितु) न (अपि तु करुते एव)। अहो ! भुवनभय-भङ्गव्यसनिनः विकारः अपि श्लाघ्यः ॥१४॥

अर्थ—हे त्रिनेत्र धारी शिव जी ! (अमृतमन्थनोद्भूतकाल कूटविष से) अकाल में ही समस्त ब्रह्माण्ड के क्षय की सम्भावना से भयभीत हुये देव और असुरों पर कृपा करके हलाहल विष को संहार (पान) करने वाले आपके कण्ठ में जो काला चिह्न हो गया वह शोभा को न बढ़ाता हो (ऐसी बात तो) नहीं (किन्तु शोभा वढ़ाता ही है) सचमुच लोकों के भय को नाश करने में पूर्णव्यसनियों का विकार (दोष) भी प्रशंसनीय ही होता है, निन्दनीय नहीं। अतः परोपकार से उत्पन्न हुआ दूषण भी भूषण ही हैं।

महापुरुषों का विकार भी प्रशंसनीय ही होता है। इसका स्पष्टीकरण करके जितेन्द्रियों का तिरस्कार हितकर नहीं होता। उसका विवेचन करते हुये पुष्पदन्त जी स्तुति करते हैं।

असिद्धार्था नैव क्वचिदपि स देवासुर नरे,
निवर्तन्ते नित्यं जगति जयिनो यस्य विशिखाः।
स पश्यन्नीश त्वामितरसुरसाधारणमभूत,
स्मरः स्मर्तव्यात्मा नहि वशिषु पथ्यः परिभवः ॥१५॥

अन्वय—ईश ! यस्य नित्यं जयिनः विशिखाः सदेवासुरनरे जगति क्वचिद् अपि असिद्धार्थाः न एव निवर्तन्ते। स स्मरः त्वाम् इतरसुरसाधारणम् पश्यन् स्मर्तव्यात्मा अभूत्। हि वशिषु परिभवः पथ्यः न (भवति) ॥१५॥

अर्थ—हे कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुम् समर्थ सर्वेश्वर ! जिस (कामदेव) के सदा जय प्रापक तीक्ष्ण बाण, देव, दानव और मानवों से व्याप्त सारे संसार में कहीं भी निष्फल नहीं लौटते, वह नित्यविजयी कामदेव आपको अन्य साधारण देवों के समान देखता हुआ स्मरण योग्य शरीर वाला (अनङ्ग) हो गया। निश्चय ही जितेन्द्रियों का तिरस्कार (अनादर) हितकर नहीं होता ॥१५॥

संसार की रक्षा के लिये की गई मंगलमूर्ति भगवान् की क्रीड़ा भी विपरीत फलवती होती है। इस बात का विवेचन करते हुये पुष्पदन्त जी कहते हैं।

महीं पादाघाताद्व्रजति सहसा संशयपदं,
पदं विष्णोर्भ्राम्यद्भुजपरिघरुग्णग्रहगणम्।
मुहुर्द्यौर्दौस्थ्यं यात्यनिभृतजटाताडिततटा,
जगद्रक्षायै त्वं नटसि ननु वामैव विभुता ॥१६॥

अन्वयः—नटवर ! पादाघाताद् मही सहसा संशयपदम् व्रजति। विष्णोः पदम् भ्राम्यद्भुजपरिघरुग्णग्रहणम् द्यौः अनि-

भृतजटाताडिततटा मुहुः दौस्थ्यम् याति। ननु त्वम् जगद्रक्षार्थं नटसि (तथापि) विभुता वामा एव।

अर्थ—हे नटराज! (ताण्डव नृत्य के समय तरल गति से सञ्चालित आपके) पैरों की चोट से पृथ्वी अचानक भौचक्की हो जाती है (कि मैं कहीं आकाश में न उड़ जाऊँ या कहीं पाताल में न समा जाऊँ इत्यादि)। भगवान् विष्णु के पद अर्थात् आकाश में घुमाई गई भुजा रूपी मुद्गरों के प्रहार से पीड़ित नक्षत्र समूह सङ्कटापन्न हो जाता है। स्वर्ग भी खुली हुई जटाओं का तट प्रदेश में झटका लग जाने से बारम्बार डाँवाँ-डोल हो जाता है। वस्तुतस्तु आप जगत् की रक्षा के लिये ही नृत्य करते हैं, (तो भी) प्रभुता विपरीत (उल्टी) ही होती है। अर्थात् वैभवशालियों की क्रीड़ा भी अल्प सामर्थ्यों के दु:ख का कारण बन बैठती है ॥१६॥

यहाँ गङ्गा के धारण और उद्धार का वर्णन करते हुये गन्धर्व-राज भगवान् की स्तुति करते हैं।

वियद्व्यापी तारागणगुणितफेनोद्गमरुचिः;
प्रवाहो वारां यः पृषतलघुदृष्टः शिरसि ते।
जगद्द्वीपाकारं जलधिवलयं तेन कृतमि-
त्यनेनैवोन्नेयं धृतमहिम दिव्यं तव वपुः ॥१७॥

अन्वयः—वियद्व्यापी, तारागणगुणितफेनोद्गमरुचिः यः वाराम् प्रवाहः ते शिरसि पृषतलघुदृष्टः तेन जलधिवलयं जगद्

द्वीपाकारं कृतम् अनेन एव तव वपुः दिव्यम् धृतमहिम इति उन्नेयम् ॥१७॥

अर्थ—हे ईश ! आकाश को आवृत करने वाला (और) तारा गणों की चमचमाहट से जिसके फेन और बुदबुदों की दीप्ति वृद्धिङ्गत हो रही है (ऐसा) जो (आकाशगङ्गा के) जलों का प्रवाह आपके शिर पर विन्दु से भी छोटा देखा गया; उसी प्रवाह ने समुद रूप मेखला से परिवेष्ठित जगत को द्वीप के आकार का कर दिया। इससे ही आपका शरीर दिव्य अलौकिक महिमा को धारण करने वाला है, ऐसा अनुमान करना चाहिए। इसका तात्पर्य यह है कि आपका वैभव एवं दिव्यातिदिव्य माँगलिकगुण अनन्त हैं ॥१७॥

ईश्वर प्रत्येक कार्य में पूर्ण स्वतन्त्र होता है। उसके ऊपर किसी प्रकार का नियोग नहीं होता इसको दिखाते हुए पुष्पदन्त जी कहते हैं।

रथः क्षोणी यन्ता शतधृतिरगेन्द्रो धनुरथो;
रथाङ्गे चन्द्रार्कौ रथचरणपाणिः शर इति ।
दिधक्षोस्ते कोऽयं त्रिपुरतृणमाडम्बरविधि-
र्विधेयैः क्रीडन्त्यो न खलु परतन्त्राः प्रभुधियः ॥१८॥

अन्वयः—ईश ! क्षोणी रथः, शतधृतिःयन्ता, अगेन्द्रः-धनुः, चन्द्रार्कौ रथाङ्गे, अथो रथचरणपाणिः शरः, त्रिपुरतृणम् दिधक्षोः

ते इति अयम् आडम्बरविधिः कः। खलु विधेयैः क्रीडन्त्यः प्रभुधियः परतन्त्रा न।

अर्थ—हे ईश! पृथ्वी को रथ, ब्रह्मा को सारथी; सुमेरु पर्वत को धनुष, चन्द्रमा सूर्य को रथ के पहिये और चक्रपाणि विष्णु भगवान् कों बाण 'बनाकर' त्रिपुरासुर रूपी तृण को दग्ध करने की इच्छा वाले आपको इस प्रकार के (लोकोत्तर) इस आडम्बर रचने की 'आवश्यकता ही' क्या 'पड़ी थी'? (क्योंकि जिसने विश्व-विजयी कामदेव को भी अनायास ही सङ्कल्प मात्र से भस्मीभूत कर दिया उसने तुच्छ तृणवत् त्रिपुरासुर को जलाने के लिये ऐसा बखेड़ा क्यों खड़ा किया? यों ही स्वभाववश) निश्चय ही स्वाधीन पदार्थों से खेलती हुई ईश्वर की बुद्धियाँ पराधीन नहीं होतीं। (प्रत्युत पूर्ण स्वतन्त्र होती हैं; 'ऐसा क्यों न किया, वैसा क्यों किया' इत्यादि नियोग नहीं हो सकता) ॥१८॥

शिव भक्ति की ऐसी अद्भुत महिमा है कि भक्ति तो कोई एक माई का लाल ही करता है, पर फल मिलता है सारे संसार को। इस गुप्त रहस्य का उद्घाटन भगवान विष्णु के आदर्श से व्यक्त किया जाता है।

हरिस्ते साहस्रं कमलबलिमाधाय पदयो-
र्यदेकोने तस्मिन् निजमुदहरन्नेत्रकमलम्।
गतो भक्त्युद्रेकः परिणतिमसौ चक्रवपुषा
त्रयाणां रक्षायै त्रिपुरहर जागर्ति जगताम् ॥१९॥

अन्वयः—त्रिपुरहर ! हरिः ते पदयोः साहस्रम् कमलबलिम् आधाय तस्मिम् एकोने यत् निजम् नेत्रकमलम् उदहरत् असौ भवत्युद्रेकः चक्रवपुषा परिणतिम् गतः त्रयाणाम् जगताम् रक्षायै जागर्ति ।

अर्थ—हे त्रिपुरारे ! भगवान् विष्णु आपके चरणों में एक हजार कमलों की भेंट लेकर (प्रतिदिन समर्पण किया करते; एक दिन) उसमें एक कम हो जाने पर जो अपने नेत्रकमल को उखाड़ा (और उसे नियमित संख्या पूर्ति के लिये आपके चरणों में भेंट किया) यह भक्ति की उत्कटता ही सुदर्शन चक्र रूप से परिणाम को प्राप्त हो गयी (और) तीनों लोकों के रक्षार्थं (आज भी) सावधान है ।

तात्पर्यं यह है कि तीव्र भक्ति से प्रसन्न हो शिवजी ने विष्णु जी को सुदर्शन चक्र दिया जो सभी लोकों की रक्षा में सर्वदा तत्पर रहता है। इस भांति भक्ति तो की एक मात्र विष्णु ने और सुदर्शन द्वारा रक्षा रूप फल मिला त्रिभुवन को ॥१९॥

भगवान् की आराधना मात्र से ही अखिल फलों की प्राप्ति का वर्णन करके ईश्वर की अपेक्षा बिना ही कर्मजन्य अपूर्व सारे फलों का विधान करता है मीमांसकों के इस आक्षेप का खण्डन करते हुए पुष्पदन्तजी कहते हैं ।

क्रतौ सुप्ते जाग्रत् त्वमसि फलयोगे क्रतुमतां;
क्व कर्म प्रध्वस्तं फलति पुरुषाराधनमृते ।

अतस्त्वां सम्प्रेक्ष्य क्रतुषु फलदानप्रतिभुवं;
श्रुतौ श्रद्धां वद्ध्वा दृढ़परिकरः कर्मसु जनः ॥२०॥

अन्वयः—त्रिपुरहर ! क्रतुमताम् क्रतौ सुप्ते फलयोगे त्वम् जाग्रत् असि। प्रध्वस्तम् कर्म पुरुषाराधनम् ऋते क्व फलति। अतः त्वाम् क्रतुषु फलदानप्रतिभुवम् सम्प्रेक्ष्य जनः श्रुतौ श्रद्धाम् वद्ध्वा कर्मसु दृढ़परिकरः (भवति) ॥२०॥

अर्थ—हे त्रिपुरान्तक ! यज्ञादि कर्मकाण्ड करने वाले याज्ञियों के (क्रिया रूप) यज्ञ समाप्त हो जाने पर (देशान्तर या कालान्तर में प्राप्त होने वाले उन) फलों के साथ सम्बन्ध कराने में आप जागते हुए सदा सावधान रहते हैं। (भला) विनष्ट कर्म चेतन पुरुष (शिव) की आराधना के बिना कहीं फल दे सकता है ? (कभी नहीं)। इस कारण आपको यज्ञों में फल देने के लिए ठीकेदार समझ बूझ कर मनुष्य वेद में श्रद्धा को बाँधकर (दृढ़ कर) कर्म करने में दृढ़ता के साथ कटिबद्ध रहता हैं ॥२०॥

ऐसी श्रद्धा की अपेक्षा अश्रद्धा से किये गये यज्ञादि कर्मों का फल विपरीत होता है। यथा—

क्रियादक्षो दक्षः क्रतुपतिरधीशस्तनुभृता—
मृषीणामार्त्विज्यं शरणद सदस्याः सुरगणाः ।
क्रतुभ्रंशस्त्वत्तः क्रतुफलविधानव्यसनिनो;
ध्रुवं कर्तुः श्रद्धाविधुरमभिचाराय हि मखाः ॥२१॥

अन्वय—शरणद: क्रियादक्षः तनुभृताम् अधीशः दक्षः क्रतुपतिः, ऋषीणाम् आर्त्विज्यम्, सुरगणाः सदस्याः, क्रतुफल-विधानव्यसनिनः त्वत्तः क्रतुभ्रंशः, ध्रुवम् कर्तुः श्रद्धाविधुरम् मखाः अभिचाराय हि (भवन्ति) ॥२१॥

अर्थ—हे अशरणों को शरण देने वाले! यज्ञादि क्रिया में अति निपुण देहधारियों का स्वामी (प्रजापति) दक्ष यज्ञ कराने वाला 'यजमान था'। (त्रिकालज्ञ भृगु आदि) ऋषि ऋत्विक् (आदि क्रिया करने वाले) थे; देवगण सभासद थे; (तथापि) यज्ञादि कर्म फल देने के पूर्ण व्यसनी आपके द्वारा (दक्ष) यज्ञ का विनाश हुआ ही। अवश्यमेव कर्ता की श्रद्धा के बिना किये गये यज्ञ विपरीत फलदायक ही होते हैं ॥२१॥

कुमार्गावलम्बी चाहे ब्रह्मा ही क्यों न हो, भगवान् भूतनाथ उसे उचित दण्ड अवश्य देते हैं।

प्रजानाथं नाथ ! प्रसभमभिकं स्वां दुहितरं,
गतं रोहिद्भूतां रिरमयिषुमृष्यस्य वपुषा।
धनुष्पाणेर्यातं दिवमपि सपत्राकृतममुं;
त्रसन्तं तेऽद्यापि त्यजति न मृगव्याधरभसः ॥२२॥

अन्वयः—नाथ! रोहिद्भूताम् स्वाम् दुहितरम् (अनु) ऋष्यस्य वपुषा प्रसभं रिरमयुषुम् गतम् सपत्राकृतम् दिवम् यातम् अपि त्रसन्तम् अभिकम् अमुम् प्रजानाथम् धनुष्पाणेः ते मृगव्याधरभसः अद्यापि (अनुवर्तनम्) न त्यजति ॥२२॥

अर्थ—देव, दनुज, नर, नाग आदि की नाकों को नाथ कर मर्यादित रखने वाले हे पशुपते ! मृगी१ के रूप में परिणत हुई अपनी ही लड़की के पीछे मृग शरीर से हठ पूर्वक रमण की इच्छा से गये हुए (पर समेत बाण लगने की पीड़ा के समान) अत्यन्त व्यथित हो स्वर्ग में जाके भी भयभीत हुए इन कामुक ब्रह्मा जी को धनुर्धर आपके बाण का वेग आज भी (पीछा) नहीं छोड़ता।

परम जितेन्द्रिय भगवान् शङ्कर अपने आपको पार्वती पर दया परवशतावश स्त्रैण से दिखा रहे हैं। इस भाव को दिखाते हुए गन्धर्वराज स्तुति करते हैं।

१—पुराणों में यह कथा प्रसिद्ध है—ब्रह्मा जी ने अपनी परम सुन्दरी पुत्री सतरूपा नामक संध्या को देखकर कामावेश में आ उसके साथ रमण करना चाहा। संध्या ने अपने जनक की इस कुचेष्टा से लज्जित हो मृगी का रूप धारण कर लिया। उसके मृगी होते ही समर्थ ब्रह्मा भी तत्काल मृगरूप हो गये। प्रजापति एवं धर्माध्यक्ष पितामह को ऐसे कुत्सित कर्म में प्रवृत्त होते देख त्रैलोकपति शिवजी से न रहा गया और ब्रह्मा को इस घोर अपराध का दण्ड देने के निश्चय से धनुष पर बाण संधान कर उसके पीछे छोड़ा। फिर क्या था ब्रह्मा अपने इस कुकृत्य पर लज्जित हो मृग शिर नक्षत्र बनकर आकाश में जा बैठा। यह देख शिवजी का बाण भी आर्द्रा नक्षत्र बन उसके पीछे जा बैठा। अभी तक पीछा नहीं छोड़ता।

स्वलावण्याशंसा धृतधनुषमह्नाय तृणवत्,
पुरः प्लुष्टं दृष्ट्वा पुरमथन पुष्पायुधमपि ।
यदि स्त्रैणं देवी यमनिरत देहार्धघटना-
दवैति त्वामद्धा बत वरद मुग्धा युवतयः ॥२३॥

अन्वयः—पुरमथन ! धृतधनुषम् पुष्पायुधम् पुरः अह्नाय तृणवत् प्लुष्टम् दृष्ट्वा अपि वरद ! देहार्धघटनात् स्वलावण्याशंसा देवी यदि त्वाम् स्त्रैणम् अवैति हे यमनिरत ! बत युवतयः अद्धा मुग्धाः (भवन्ति) ।

अर्थ—हे पुर दैत्य नाशक महादेव ! पुष्प-धनुष को धारण करने वाले कामदेव को अपने ही सामने तत्क्षण तिनके की भाँति भस्म होते देख कर भी हे वरद ! अपनी देह के आधे भाग में स्थापित करने से (अर्थात् अर्द्धाङ्गिनी बनाने से) अपने सौन्दर्य के गर्व में आकर पार्वती यदि आपको कामी समझे (तो भले ही समझे) । हे यम आदि अष्टाङ्ग[१] योग परायण योगीश्वर ! है बड़े खेद की बात कि स्त्रियाँ सचमुच भोली-भाली नासमझ होती हैं ! (वस्तुतः आप स्त्रैण नहीं पूर्ण कामजित हैं) ॥२३॥

आप स्वयं अमङ्गलाचरण करते हुए भी भक्तों का सर्वदा मंगल ही विधान करते हैं यह दिखलाते हुए गन्धर्वराज स्तुति करते हैं ।

१—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि के नाम अष्टांग योग है ।

श्मशानेष्वाक्रीड़ा स्मरहर पिशाचाः सहचरा—
श्चिताभस्मालेपः स्रगपि नृकरोटीपरिकरः ।
अमङ्गल्यं शीलं तव भवतु नामैवमखिलं;
तथापि स्मर्तृणां वरद परमं मङ्गलमसि ॥२४॥

अन्वः—स्मरहर ! श्मशानेषु आक्रीड़ा; पिशाचाः सहचराः; चिताभस्म आलेपः; अपि नृकरोटी स्रक् (एषः ते) परिकरः (अस्ति)। एवम् तव अखिलम् शीलम् अमंगल्यं भवतु नाम। तथापि वरद ! स्मर्तृणाम् परमम् मंगलम् असि ॥२४॥

अर्थ—हे कामान्तक ! श्मशानों में क्रीड़ा करना, पिशाचों के साथ रहना, चिता की भस्म रमाना और नरमुण्डों की माला धारण करना; (यही आपकी) सामग्री (है)। इस प्रकार आपका सारा स्वभाव अमंगल जनक भले ही क्यों न हो ? तो भी हे वरद ! स्मरण करने वालों के लिये तो (आप) अत्यन्त मंगल रूप ही हैं ॥२४॥

अशेष विशेष रहित अद्वितीय परब्रह्म की आनन्द रूपता में विवेकियों के अनुभूत प्रत्यक्ष प्रमाण को प्रदर्शित करते हुए पुष्पदन्त जी कहते हैं।

मनः प्रत्यक् चित्ते सविधमवधायात्तमरुतः;
प्रहृष्यद्रोमाणः प्रमदसलिलोत्सङ्गितदृशः ।

यदालोक्याह्लादं ह्रद इव निमज्ज्यामृतमये;
दधत्यन्तस्तत्त्वं किमपि यमिनस्तत्किल भवान् ॥२५॥

अन्वयः—भगवन् ! यमिनः सविधम् आत्तमरुतः अपि (समुच्चयार्थं) मनः प्रत्यक्चित्ते अवधाय यत् किम् तत्त्वम् अन्तः आलोक्य प्रहृष्यद्रोमाणः प्रमदसलिलोत्संगितदृशः इव अमृतमये ह्रदे निमज्य आह्लादं दधति तत् किल भवान् ॥२५॥

अर्थ—हे भगवन् ! (यमनियमादि अष्टांग योगानुष्ठान में तत्पर) योगीजन (योग शास्त्रोक्त) विधि के अनुसार (प्राणायाम के द्वारा) प्राण वायु को रोक कर और मन को अन्तरात्मा में समाहित करके जिस किसी (अनिर्वचनीय) अपूर्वतत्त्व को अन्तःकरण में अवलोकन (अनुभव) करके रोमाञ्चित हो आनन्दाश्रुपूर्ण नेत्र मानो अमृत के सरोवर में डुबकी लगाकर परमानन्द को प्राप्त होते हैं। वह निर्विशेष ब्रह्म तत्त्व भी वस्तुतः आप ही तो हैं ॥२५॥

जिस अद्वितीय सच्चिदानन्दघन सर्वात्मभूत ब्रह्म विषयक अनुभव रूप प्रत्यक्ष प्रमाण का उल्लेख किया उसी का अद्वितीय-पना तर्क से सिद्ध करते हुये पुष्पदन्त जी बोले—

त्वमर्कस्त्वं सोमस्त्वमसि पवनस्त्वं हुतवह-
स्त्वमापस्त्वं व्योम त्वमु धरणिरात्मा त्वमिति च ।
परिच्छिन्नामेवं त्वयि परिणता बिभ्रतु गिरं,
न विद्मस्तत्तत्त्वं वयमिह तु यत्त्वं न भवसि ॥२६॥

अन्वयः—प्रभो ! त्वम् अर्कः असि, त्वम् सोमः, त्वम् पवनः त्वम्—हुतवहः, त्वम् आपः, त्वम् व्योमः, त्वम् धरणिः, उत्वम् आत्मा च, इति एवम् परिणताः त्वयि परिच्छिन्नाम् गिरम् बिभ्रतु। तु वयम् इह तत् तत्त्वम् न विद्मः यत् त्वम् न भवसि ॥२६॥

अर्थ—हे प्रभो ! आप सूर्य हैं। आप सोम (चन्द्रमा) हैं। आप वायु हैं। आप अग्नि है। आप जल हैं। आप आकाश हैं। आप पृथ्वी हैं और आप ही आत्मा भी हैं। (इस प्रकार आपके) इन आठ विग्रहों के वर्णन में दृढ़ आग्रही विद्वज्जन आपके विषय में संकुचितवाणी को भले ही बोलते रहें। परन्तु हम तो यहाँ उस तत्त्व को ही नहीं जानते जो आप न हों।

भाव यह कि देश, काल, वस्तु सब कुछ आपका स्वरूप मात्र है। आपके अनादि अनन्त स्वरूप में किसी प्रकार की परिच्छिन्नता सम्भव ही नहीं।

इस प्रकार पूर्वोक्त "मनःप्रत्यक् चित्ते" श्लोक के द्वारा त्वं पद का और "त्वमर्कस्त्वं सोमः" के द्वारा तत् पदार्थ का शोधन कर इस अग्रिम श्लोक से अखण्ड वाक्यार्थ प्रतिपादन करते हुए गन्धर्वराज कहते हैं कि—

त्रयीं तिस्रोवृत्तीस्त्रिभुवनमथोत्रीनपिसुरा-
नकाराद्यैर्वर्णैस्त्रिभिरभिदधत्तीर्णविकृति ।
तुरीयं ते धामध्वनिभिरवरुन्धानमणुभिः,
समस्तं व्यस्तं त्वां शरणद गृणात्योमिति पदम् ॥२७॥

अन्वयः—शरणद ! ओम् इति पदम् अकाराद्यैः त्रिभिः वर्णैः व्यस्तम्; त्रयीं तिस्त्रः वृत्तीः त्रिभुवनम् त्रीन् सुरान् अथो अपि त्वाम् अभिदधत् । समस्तम् तीर्णं विकृति ते तुरीयम् धाम अणुभिः ध्वनिभिः अवरुन्धानम् गृणाति ॥२७॥

अर्थ—शरणार्थिमात्र को बिना किसी जाति-पाँति, भेद-भाव के शरणप्रद हे महाशरण्य शिवजी ! ॐ यह पद अकरादि (अकार, उकार, मकार इन) तीन अक्षरों में विभक्त हुआ ऋक्-यजु-साम तीनों वेदों, जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति अथवा उत्पत्ति-स्थिति-लय रूप तीनों अवस्थाओं, भु-र्भुवः स्वः (स्वर्ग-भूमि-पाताल) तीनों लोकों, ब्रह्मा-विष्णु-महेश त्रिदेवों और (स्थूल-सूक्ष्म-कारण शरीरों; विश्व-तैजस-प्राज्ञ तीनों शरीराभिमानियों; विराट-हिरण्यगर्भ-ईश्वर ये तीन समष्टि शरीराभिमानियों अध्यात्म अधिभूत-अधिदैव आदि त्रिपुटियों के रूपों में) भी आपको ही समुदाय शक्ति द्वारा वाच्यार्थ रूप से कथन करता है और अविभक्त हुआ अखण्ड वही ॐ पद विकार रहित आपकी तीनों अवस्थाओं से परे अखण्ड चैतन्य स्वरूप को सूक्ष्म (अर्द्धमात्रा रूप) ध्वनियों के द्वारा लक्षित करता हुआ कथन करता है। अर्थात् स्थूल-सूक्ष्म-कारण-महाकारण आदि सभी कुछ ॐ कारा-भिन्न शिव ही हैं ॥२७॥

इस प्रकार अद्वितीय ब्रह्म के वाचक प्रणव का वर्णन करके सर्वसाधारणोपयोगी न समझ सबके हित की दृष्टि से भगवान्

के वाचक प्रसिद्ध नामों का निर्देश करते हुए गन्धर्व राज स्तवन करते हैं कि—

भवः शर्वो रुद्रः पशुपतिरथोग्रः सहमहाँ-
स्तथा भीमेशानाविति यदभिधानाष्टकमिदम्
अमुष्मिन् प्रत्येकं प्रविचरति देव श्रुतिरपि;
प्रियायास्मै धाम्ने प्रणिहितनमस्योऽस्मिभवते ॥२८॥

अन्वयः—देव ! भवः, शर्वः, रुद्रः, पशुपतिः, उग्रः, सहमहान् अथ तथा भीमेशानौ, इति यद् इदम् अभिधानाष्टकम् अमुष्मिन् प्रत्येकम् श्रुतिः अपि प्रविचरति प्रियाय अस्मै धाम्ने भवते (अहमपि प्रणिहित नमस्यः अस्मि ॥२८॥

अर्थ—दिव्यता के भण्डार हे देव ! (१) भव (२) शर्व (३) रुद्र (४) पशुपति (५) उग्र (६) ईश्वरों के ईश्वर महेश्वर अथवा देवों के भी देव महादेव (७) भीम और (८) ईशान इस प्रकार का जो यह नामाष्टक है, इसमें से प्रत्येक नाम को वेदवाणी भी बड़ी सावधानी से पुकारती रहती है। एतदर्थ परमप्रिय इस सर्वाश्रय–तेजोमय आप महेश्वर के लिए (मैं भी) साष्टाङ्ग नमस्कार करता हूँ ॥२८॥

श्री पुष्पदन्त जी अब अतिशय भक्ति–भाव–भरी सुगूढ़ महिमा-मयी वाङ्मय द्वारा स्तुति करते हैं—

नमो नेदिष्ठाय प्रियदव दविष्ठाय च नमो;

नमः क्षोधिष्ठाय स्मरहर महिष्ठाय च नमः ।

नयो वर्षिष्ठाय त्रिनयन यविष्ठाय च नमो;
नमः सर्वस्मै ते तदिदमिति शर्वाय च नमः ॥२६॥

अन्वयः—प्रियदव ! नेदिष्ठाय ते नमः, च दविष्ठाय नमः स्मरहर ! क्षोदिष्ठाय नमः; च महिष्ठाय नमः, त्रिनयन ! वर्षिष्ठाय नमः, च यविष्ठाय नमः, सर्वस्मै नमः, च तत् इदम्, इति, शर्वाय नमः ॥२६॥

अर्थ—हे एकान्त प्रिय भगवन् ! समीप से भी समीपवर्ती (अन्तरात्म स्वरूप) आपके लिये नमस्कार है। और दूर से दूरवर्ती आपके लिये नमस्कार है। हे कामान्तक ! क्षुद्र से भी क्षुद्रतर (अणोरणीयान्) आपके लिए नमस्कार है। और अति महान् (महतो महीयान) आपके लिए नमस्कार हैं। हे त्रिनयन ! वृद्धातिवृद्ध (कालातीत) आपके लिए नमस्कार है। और युवा से भी युवा (जरारहित) आपके लिए नमस्कार है। एवं सर्वरूपी आपके लिए नमस्कार है। और वह (परोक्ष) यह नाम रूप वाले (प्रत्यक्ष आदि सर्वावस्थातीत अनिवर्चनीय) इस प्रकार के आप शर्व के लिए करोड़ों बार नमस्कार है ॥२६॥

तदनन्तर पूर्वोक्तानुसार संक्षेप से नमस्कार करते हुए गन्धर्व राज प्रार्थना करते हैं !

बहलरजसे विश्वोत्पत्तौ भवाय नमो नमः;
प्रबलतमसे तत्संहारे हराय नमो नमः।

जनसुखकृते सत्वोद्रिक्तौ मृडाय नमो नमः;
प्रमहसि पदे निस्त्रैगुण्ये शिवाय नमो नमः ॥३०॥

अन्वयः—विश्वोत्पत्तौ बहुलरजसे भवाय नमो नमः। जनसुखकृते सत्वोद्रिक्तौ मृडाय नमो नमः तत् संहारे प्रबलतमसे हराय नमो नमः। प्रमहसि पदे निस्त्रैगुण्ये शिवाय नमो नमः ॥३०॥

अर्थ—विश्व की उत्पत्तिकाल में रजोगुणविशिष्ट भव (ब्रह्मा रूप) आपके लिये बारम्बार नमस्कार है। संसारी जीवों को सुखी करने के समय (स्थितिकाल में) सत्व प्रधान मृड (विष्णु) रूप आपके लिए अनन्तबार नमस्कार है। तथा संसार के संहार काल में तमः प्रधान हर (रुद्र रूप) आपके लिए भूयोभूयो नमस्कार है। सर्वोत्तम प्रकाशरूप मोक्ष की प्राप्ति के निमित्त त्रिगुणातीत शिव (परमानन्द बोध) रूप आपके लिए अनेकों बार नमस्कार है। वस्तुतः तो आपका स्वरूप सर्वोपाधिरहित निस्त्रैगुण्य ही है।

इस प्रकार सर्वथा अस्तुत्य (मन ओर वाणी के अविषय) भगवान् की स्तुति करके पूर्व कृत अपनी उद्दण्डता का उपसंहार करते हुए यक्षपति कहते हैं कि—

कृशपरिणतिचेतः क्लेशवश्यं क्वचेदं
क्व च तव गुणसीमोल्लङ्घिनी शश्वदृद्धिः।

इति चकितममन्दीकृत्य मां भक्तिराधाद्-
वरद चरणयोस्ते वाक्यपुष्पोपहारम् ॥३१॥

अन्वयः—हे वरद ! क्व च गुण सीमोल्लङ्घिनी तव शश्वद् ऋद्धिः। च क्व इदम् क्लेशवश्यम् कृशपरिणति चेतः। इति चकितम् माम् भक्तिः अमन्दीकृत्य ते चरणयोः वाक्य पुष्पोपहारम् आधात् ॥३१॥

अर्थ—हे वरद ! कहाँ तो गुणों की सीमा का अतिक्रमण करने वाली आपकी सनातन महिमा और कहाँ यह पञ्चक्लेश-क्लेशित असामर्थ्य (मेरा) चित्त। इस प्रकार (अपनी अयोग्यता के कारण स्तुति करने में) भ्रमित हुए मुझे (आपकी चरण) भक्ति ने ही बलात् प्रवृत्त करके आपके चरणों में वाक्य रूपी पुष्पों की भेंट अर्पण कराई है ॥३१॥

श्री पुष्पदन्तजी उपर्युक्त श्लोक में भगवान् शिव के गुणगण-गान में स्व अयोग्यता तथा दृढ़ भक्ति में असम्भावित फलदान की अपूर्व शक्ति प्रदर्शित करते हुए इस श्लोक द्वारा शिव महिमा का उत्कर्ष वर्णन करते हैं।

असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे,
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति ॥३२॥

अन्वयः—ईश ! सिन्धुपात्रे असितगिरिसमम् कज्जलम् स्यात्। सुरतरु वर शाखा लेखनी। उर्वी पत्रम् गृहीत्वा यदि शारदा सर्वकालम् लिखति, तद् अपि तव गुणानाम् पारम् न याति ॥३२॥

अर्थ—हे महेश ! समुद्र रूपी दावात में कालेपर्वत के बराबर स्याही हो और कल्पवृक्ष की सुन्दर शाखा की कलम तथा पृथ्वी रूपी कागज लेकर यदि सरस्वती देवी सर्वदा (खाना; पीना, सोना, मरना आदि त्याग कर) प्रतिक्षण लिखती ही रहें तो भी आपके गुणों का पार नहीं पा सकतीं। अर्थात् जब साक्षात् सरस्वती ही आपकी महिमा वर्णन करने में असमर्थ हैं तो इतर साधारण व्यक्तियों का तो कहना ही क्या है ? ॥३२॥

इस प्रकार अनन्त ऐश्वर्य तथा असीम महिमा वाले भगवान् शिव के स्तवन में सर्वथा अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए उपसंहार तथा महिम्नः स्तोत्र का माहात्म्य वर्णन करते हैं।

असुरसुरमुनीन्द्रैरर्चितस्येन्दुमौले—
ग्रंथितगुणमहिम्नो निर्गुणस्येश्वरस्य।
सकलगुणवरिष्ठः पुष्पदन्ताभिधानो,
रुचिरमलघुवृत्तैः स्तोत्रमेतच्चकार ॥३३॥

अन्वयः—असुरसुरमुनीन्द्रैः अर्चितस्य इन्दुमौलेः ग्रथितगुण महिम्नः निर्गुणस्य ईश्वरस्य एतत् रुचिरं स्तोत्रम् सकलगुण वरिष्ठः पुष्पदन्ताभिधानः अलघुवृत्तैः चकार ॥३३॥

अर्थ—असुरेन्द्र सुरेन्द्र तथा मुनीन्द्रों द्वारा पूजित चन्द्रभाल (शिवजी) की महिमा से गुँथे हुए निर्गुण रूप महेश्वर के इस महिम्न: स्तोत्र को सम्पूर्ण गुणों में उत्तम पुष्पदन्त नाम के गन्धर्व-राज ने बड़े छन्दों द्वारा रचा।

सम्भवत: "शिव महिम्नः स्तोत्र" यहाँ समाप्त हो गया। आगे के श्लोक माहात्म्य सूचक प्रतीत होते हैं ॥३३॥

अहरहरनवद्यं धूर्जटेः स्तोत्रमेतत्;
पठति परमभक्त्या शुद्धचित्तः पुमान् यः
स भवति शिवलोके रुद्रतुल्यस्तथात्र;
प्रचुरतरधनायुः पुत्रवान् कीर्तिमाँश्च ॥३४॥

अन्वय:—यः पुमान् शुद्ध चित्तः परमभक्त्या धूर्जटेः एतत् अन-वद्यम् स्तोत्रम् अहः अहः पठति, सः अत्र प्रचुरतरधनायुः, पुत्रवान् च कीर्तिमान् भवति तथा शिव लोके रुद्रतुल्यः, भवति ॥३४॥

अर्थ—जो पुरुष चित्त को पवित्र करके परम भक्ति पूर्वक शिव जी के इस अनिन्दित स्तोत्र को प्रति दिन पढ़ता है वह इस लोक में अत्यधिक धन-धान्य तथा आयु वाला, पुत्रादि कुटुम्ब वाला और यशस्वी होता है तथा शिव लोक में पहुँच कर शिवजी के ही समान हो जाता है ॥३४॥

दीक्षा दानं तपस्तीर्थं ज्ञानं यागादिकाः क्रियाः ।
महिम्नः स्तवपाठस्य कलां नार्हन्ति षोड़शीम् ॥३५॥

अन्वयः—दीक्षा दानम् तपः तीर्थम् ज्ञानम् यागादिकाः क्रियाः ! महिम्नः स्तवपाठस्य षोड़शीम् कलाम् न अर्हन्ति ॥३५॥

अर्थ—मन्त्र दीक्षा लेना, दान देना, तप करना, तीर्थाटन करना, शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त करना, यज्ञ आदि सारी क्रियायें इस महिम्नः स्तोत्र के पाठ की सोलहवीं कला के भी बराबर नहीं हो सकतीं।

आसमाप्तमिदं स्तोत्रं पुण्यं गन्धर्वभाषितम् ।
अनौपम्यं मनोहारि शिवमीश्वरवर्णनम् ॥३६॥

अन्वयः—पुण्यम्, अनौपम्यम्, मनोहारि, शिवम्, ईश्वर वर्णनम् गन्धर्वभाषितम् इदम् स्तोत्रम् आसमाप्तम् ॥३६॥

अर्थ—अत्यन्त पवित्र, उपमा रहित, मनोहर, कल्याण रूप शिवजी की महिमा के वर्णन से परिपूर्ण गन्धर्वराज के द्वारा कहा गया यह स्तोत्र समाप्त हुआ ॥३६॥

महेशान्नापरोदेवो महिम्नो नापरा स्तुतिः ।
अघोरान्नापरो मन्त्रो नास्ति तत्त्वं गुरोः परम् ॥३७॥

अन्वयः—महेशात् अपरः देवः न अस्ति, महिम्नः अपरा स्तुतिः न, अघोरात् अपरः मन्त्रः न, गुरोः परम् तत्त्वम् न अस्ति ॥३७॥

अर्थ—महेश से बढ़कर दूसरा कोई देवता नहीं, महिम्नः स्तोत्र से बढ़कर अन्य कोई स्तुति नहीं, अघोर (पंचमन्त्र तथा प्रणव मन्त्र) से उत्तम दूसरा कोई मन्त्र नहीं और गुरु से श्रेष्ठ कोई तत्त्व नहीं अर्थात् गुरु तत्त्व ही परतत्त्व है ॥३७॥

कुसुमदशननामा सर्वगन्धर्वराजः;
शिशुशशिवरमौलेर्देवदेवस्य दासः ।
स खलु निजमहिम्नो भ्रष्ट एवास्य रोषात् ;
स्तवनमिदमकार्षीद्दिव्यदिव्यं महिम्नः ॥३८॥

अन्वयः—शिशु शशि वरमौलै देवदेवस्य दासः कुसुमदशन-नामः सर्वगन्धर्वराजः खलु अस्य रोषात् एव निजमहिम्नः भ्रष्टः दिव्यदिव्यम् इदम् महिम्नः स्तवनम् अकार्षीत् ॥३८॥

अर्थ—मस्तक में श्रेष्ठ बाल (द्वितीया के) चन्द्रमा को धारण करने वाले देवाधिदेव महादेवजी के दास उस पुष्पदन्त नामक समस्त गन्धर्वों के राजा ने वास्तव में इन शिवजी के कोप से ही अपनी महिमा (अदर्शन शक्ति) से च्युत हो परम दिव्य इस महिम्नः स्तोत्र को बनाया ॥३८॥

सुरवरमुनिपूज्यं स्वर्गमोक्षैकहेतुं;
पठति यदि मनुष्यः प्राञ्जलिर्नान्यचेताः ।
व्रजति शिवसमीपं किन्नरैः स्तूयमानः;
स्तवनमिदममोघं पुष्पदन्तप्रणीतम् ॥३९॥

अन्वय—सुरवरमुनिपूज्यं स्वर्गमोक्षैकहेतुं पुष्पदन्त प्रणीतम् अमोघम्, इदम् स्तवनम् यदि मनुष्यः, प्राञ्जलिः अन्यचेताः न पठति, किन्नरैः स्तूयमानः शिव समीपम् व्रजति ।।३९।।

अर्थ—इन्द्रादि बड़े-बड़े देवों और मुनिगणों से पूजित, स्वर्ग एवं मोक्ष के प्रमुख कारण, पुष्पदन्त रचित कभी व्यर्थ न जाने वाले इस स्तोत्र को यदि कोई मनुष्य हाथ जोड़कर शिव के सिवा अन्य में चित्त न लगा कर (अर्थात् एकाग्र चित्त से) पाठ करता है तो (प्रारब्धभोग पूरा होने पर) वह किन्नरों के द्वारा स्तुति किया जाता हुआ शिवजी के समीप पहुँच जाता है। जब कि केवल पाठ करने मात्र से ही शिवजी का सान्निध्य प्राप्त होता है। तब फिर यथार्थ रूप से समझ बूझ लेने पर शिव सारूप्यता असम्भव कहाँ ? ।।३९।।

श्री पुष्पदन्तमुखपङ्कजनिर्गतेन;
स्तोत्रेण किल्विषहरेण हरिप्रियेण ।
कण्ठस्थितेन पठितेन समाहितेन;
सुप्रीणितो भवति भूतपतिर्महेशः ।।४०।।

अन्वयः—श्री पुष्पदन्तमुखपङ्कजनिर्गतेन, किल्विषहरेण, हरप्रियेण स्तोत्रेण, समाहितेन, कण्ठस्थितेन, पठितेन भूतपतिः महेशः सुप्रीणितो भवति ।।४०।।

अर्थ—श्री पुष्पदन्ताचार्य के मुखारविन्द से निकले हुए त्रिविध (कायिक, वाचिक, मानसिक) पाप पुञ्जों को हर

लेने वाले, शिवजी के परमप्रिय स्तोत्र का सावधानी से कण्ठस्थ पाठ करने से भूतनाथ शङ्कर जी अत्यन्त प्रसन्न होते हैं अथवा इसे कण्ठाग्र करने या पढ़ने या मनन करने से भूतनाथ की प्रसन्नता होती है ॥४०॥

इत्येषा वाङ्मयीपूजा श्रीमच्छङ्करपादयोः ।
अर्पिता तेन देवेशः प्रीयतां मे सदाशिवः ॥४१॥

अन्वय—इति एषा वाङ्मयीपूजा तेन श्रीमच्छङ्कर पादयो, अर्पिता (तस्मात्) देवेशः सदाशिवः (तस्योपरि यथा प्रसन्नोऽभूत्तथैव) मे प्रीयताम् ॥४१॥

अर्थ—इस प्रकार की यह (महिम्नः, स्तोत्र रूप) शब्दमयी भेंट (श्रद्धाञ्जलि) उस (पुष्पदन्त) ने श्रीमान् शङ्कर जी के पाद पद्मों में अर्पण की (तिस कारण से) देवों के ईश्वर भगवान् सदाशिव (उसके ऊपर जैसे प्रसन्न हुए थे वैसे ही) मेरे ऊपर भी प्रसन्न हों ॥४२॥

यदक्षरं पदं भ्रष्टं मात्राहीनं च यद्भवेत् ।
तत्सर्वं क्षम्यतां देव प्रसीद परमेश्वर ॥

"इति श्री पुष्पदन्ताचार्यं विरचितं महिम्नः स्तोत्रं "रामप्रताप शास्त्रि कृतं" सान्वय भाष्यं परिपूर्णम्"

॥ शुभंभूयात् ॥

"अथ शिवनामावलि"

ॐ महादेव शिवशंकर शम्भो; उमाकान्त हर त्रिपुरारे ।
मृत्युञ्जय वृषभध्वज शूलिन्; गङ्गाधर मृड. मदनारे ॥
हर शिव शंकर गौरीशं; वन्दे गङ्गाधरमीशम् ।
शिव रूद्रं पशुपतिमीशानं; कलये काशीपुरिनाथम् ॥

अर्थ—हे सर्वत्र रक्षक! हे महादेव! हे परम बोधस्वरूप शिव! हे कल्याण करने वाले शंकर! हे परम कल्याण मूर्ति शम्भो! हे पार्वती पते! हे सर्व दुख हारी हर! हे त्रिपुरासुर संहारक! हे मृत्यु को जीतने वाले! हे धर्म के सूचक वृषभ चिह्नमयी ध्वजा वाले वृषभध्वज! अथवा धर्मध्वजी! हे त्रिशूल धारी! तीनों आध्यात्मिकादितापों से सर्वथा विभक्त या त्रिगुणमय जाग्रत, स्वप्न सुषुप्ति अवस्थाओं से आनन्दमय अथवा त्रिगुणातीत तुरीयावस्था में निमग्न रहते हैं यही शिव जी का त्रिशूलधारी (शूलिन्) होना है। हे भगवती पापनाशिनी गङ्गा को धारण करने वाले! हे समस्त देव, दानव, मानवों से (मृड) स्तुत्य हे काम के नाशक कामारि! हे हर! हे शिव! हे शंकर! पार्वती पति, गङ्गाधर, सर्वेश्वर आपको वन्दन करता हूँ। 'रु' माने रुलाना 'द्र' माने कुत्सित गति अर्थात् अत्याचारियों को दण्ड देकर रुलाने से इनका नाम 'रुद्र' है।

पशु रूपी जीवों को पशुपाश से विमुक्त करने वाले और सर्व-शासक काशीपुरी के नाथ आपको मैं हृदय से रटन करता हूँ।

जय शम्भो जय शम्भो शिव गौरीशङ्कर जय शम्भो।
जय शम्भो जय शम्भो शिव गौरीशङ्कर जय शम्भो ॥

(प्रथम इन पद्यों को ४ बार पढ़कर ही ॐ पूर्णमद पढ़ना चाहिये)

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते;
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

अर्थ—वह [प्रत्यक्ष दृष्टि गोचर न होने वाला (परोक्ष) कारण ब्रह्म सर्वत्र] परिपूर्ण है और यह (नाम रूपात्मक कार्य ब्रह्म भी सर्वत्र) पूर्ण है। क्योंकि पूर्ण से पूण ही निकलता है। (प्रलय काल में) पूर्ण (कार्य ब्रह्म) का पूर्णत्व लेकर पूर्ण (कारण ब्रह्म) ही शेष रहता है।

"श्री गुरु वन्दना"

ॐ ब्रह्मानन्दं परम सुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिं,

द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादि लक्ष्यम ।

एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतं;

भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तन्नमामि ॥१॥

अर्थ—ब्रह्मानन्द रूप, परम सुख के दाता, अज्ञान रहित, ज्ञान स्वरूप, रागद्वेषादि द्वन्द्वों से परे, आकाशवत् सर्व सङ्ग रहित, "तत्त्वमसि" आदिक महावाक्यों के लक्ष्यार्थ, द्वैत रहित (शुद्ध अद्वैत मात्र), नित्य (त्रिकालावाध्य), अमल, अचल, सबकी बुद्धिमात्र के साक्षी, षड् (अस्ति, जायते, वर्द्धते, विपरिणमते, अपक्षीयते, विनश्यति,) भाव विकारों से रहित, त्रिगुणातीत उन सद्गुरु देव को कोटिशः नमस्कार है ॥१॥

अज्ञानतिमिरान्धस्यज्ञानाञ्जनशलाकया ।

चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः ॥२॥

अर्थ—जिन्होंने अज्ञान रूपी अन्धकार से अन्धी (विवेकान्ध) आँखों को ज्ञान (स्वस्वरूप बोध) रूपी अञ्जन की शलाका से खोल दिया है अर्थात् सदसत् का विवेक पैदा करा दिया है उन परम करुणावरुणालय सद्गुरु देव के लिये नमस्कार है ॥२॥

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुः साक्षात्परं ब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः ॥३॥

अर्थ—(विचारवान् शिष्य के शुद्ध चित्त में ज्ञान उत्पन्न करने वाले) गुरुदेव प्रत्यक्ष ब्रह्मा हैं। (उत्पन्न हुए ज्ञान की नित्य सदुपदेशों द्वारा रक्षा करने वाले) गुरुदेव जी साक्षात् विष्णु भगवान् हैं और (शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा, समाधानादि साधनों के द्वारा काम, क्रोधादि प्रबल षट् शत्रुओं के संहारक) गुरुदेव ही साक्षात् महेश्वर हैं। कहाँ तक कहा जाय सद्गुरु देव तो थाक्षात् परब्रह्म ही हैं। उन सद्गुरु देव के लिए बारम्बार नमस्कार है ॥३॥

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः ॥४॥

अर्थ—जिन सद्गुरु देव भगवान् ने अखण्ड ब्रह्माण्ड मण्डलमय समस्त स्थावर जङ्गम जगत को (सुवर्ण से व्याप्त आभूषणों की भाँति आत्म रूप से) परिव्याप्त कर रखा है और जिन्होंने (आत्मस्वरूप) को प्रत्यक्ष दरशा (साक्षात्कार करा) दिया है, उन अहैतुकी कृपामूर्ति सद्गुरु भगवान् के लिए कोटिशः नमन है ॥४॥

ध्यानमूलंगुरोर्मूर्तिः पूजामूलं गुरोः पदम् ।
मन्त्रमूलं गुरोर्वाक्यं मोक्षमूलं गुरोः कृपा ॥५॥

अर्थ—प्रत्यक्ष चर्म चक्षुओं की विषय भूता सद्गुरु देव की मूर्ति ही ध्यान की मूलजड़ है। गुरुदेव के परम पावन चरण कमल ही पूजा की मूल हैं। श्री सद्गुरु के मोहतम नाशक स्व स्वरूपावभासक सदुपदेश ही समस्त मन्त्रों की जड़ है अर्थात् सारे मंत्रों का प्रादुर्भाव गुरु वाक्यों से ही होता है। और सद्गुरुओं की कृपा ही मोक्ष मूलक अर्थात् परम मोक्ष रूप है ॥५॥

अखण्डानन्दबोधाय शिष्यसन्तापहारिणे ।
सच्चिदानन्दरूपाय रामाय गुरवे नमः ॥६॥

अर्थ—अखण्ड (त्रिविध दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति पूर्वक) परमानन्द का बोध कराने वाले ! शरणागत सच्छिष्यों के संतापों को हरने वाले ! सत्, चित्, आनन्द स्वरूप (सर्वत्र रमण करने वाले) रामरूप सद्गुरु देव को नमस्कार है ॥६॥

नमः शिवाय गुरवे; सच्चिदानन्दमूर्तये ।
निष्प्रपञ्चाय शान्ताय निरालम्बाय तेजसे ॥७॥

अर्थ—अखिल द्वैत प्रपञ्चों से रहित, परम शान्त स्वरूप आश्रय रहित निराधार, तेजः पुञ्ज, सन्मूर्ति, चिन्मूर्ति, आनंद मूर्ति और परम कल्याण मूर्ति गुरुदेव के लिए नमस्कार है ॥७॥

परमाद्वैतविज्ञानं कृपया यो ददाति वै ।
सोऽयं गुरुर्गुरुः साक्षाच्छिव एव न संशयः ॥८॥

अर्थ—जो सद्गुरु परम कृपा करके अद्वैत ब्रह्म के अनुभव-पूर्ण (अपरोक्ष) ज्ञान को प्रदान करते हैं वे ये गुरुओं के भी गुरु साक्षात् शिव ही हैं इसमें सन्देह नहीं ॥८॥

ईश्वरो गुरुरात्मेति मूर्तिभेद विभागिने ।
व्योमवद् व्याप्तदेहाय दक्षिणामूर्तयेनमः ॥९॥

अर्थ—ईश्वर, गुरु, आत्मा इस प्रकार की मूर्तियों के भेद से विभक्त होने पर भी वस्तुतः आकाश के समान अविभक्त रूप से सर्वत्र व्याप्तस्वरूप दक्षिणामूर्ति शङ्कर को नमस्कार है ॥९॥

सर्व मङ्गल माङ्गल्ये शिवे सर्वार्थ साधिके ।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तुते ॥१०॥

अर्थ—हे समस्त कामनायें पूर्ण कर मङ्गल का साधन कराने वाली ! हे शिवे ! हे सम्पूर्ण अर्थों को सिद्ध करने वाली ! हे शरणापन्न की रक्षा करने वाली ! तीन नेत्रों वाली ! हे गौरि ! हे नारायणि ! तुम्हें नमस्कार है ॥१०॥

दुर्गे शिवेऽभयेऽमाये नारायणि सनातनि ।
जये मे मङ्गलं देहि नमस्ते सर्व मङ्गले ॥११॥

अर्थ—हे दुर्गे ! हे शिवे ! हे अभये ! हे अमाये ! हे नारायणि ! हे सनातनि ! हे जये ! मुझे मङ्गल प्रदान करो। हे सर्व मङ्गले तुम्हें नमस्कार है ॥११॥

राम नारायणानन्त मुकुन्द मधुसूदन ।
कृष्ण केशव कंसारे हरे वैकुण्ठ वामन ॥१२॥

अर्थ—हे राम ! हे नारायण ! हे अनन्त ! हे मुकुन्द ! हे मधुसूदन ! हे कृष्ण ! हे केशव ! हे कंसारे ! हे हरे ! हे वैकुण्ठ ! हे वामन ! ॥१२॥

वासुदेव महादेव गोविन्दाच्युत माधव ।
राम कृष्ण हरे विश्व सच्चिदानन्द केशव ॥१३॥

अर्थ—हे वासुदेव ! हे महादेव ! हे गोविन्द ! हे अच्युत ! हे माधव ! हे राम ! हे कृष्ण ! हे हरे ! हे विश्व ! हे सच्चिदानन्द ! हे केशव ! आपको करोड़ों बार नमस्कार है ॥१३॥

सच्चिदानन्द गोविन्द श्रीकृष्ण यदुनन्दन ।
गोपी वल्लभ राधेश पाहि मां जगदीश्वर ॥१४॥

अर्थ—हे सत्-चित्-आनन्द स्वरूप ! गोबिन्द ! जगदीश्वर। हे गोपी-वल्लभ ! राधेश ! हे यदुनन्दन ! श्रीकृष्ण ! आप मेरी रक्षा करें।

राम राम महाबाहो भक्त काम तरो विभो ।
सीता वल्लभ प्राणेश रक्ष मां शरणागतम् ॥१५॥

अर्थ—हे योगियों के एक मात्र आराम ! बड़ी बड़ी भुजाओं वाले ! भक्तों के कल्पवृक्ष ! हे व्यापक स्वरूप ! सीतापते !

प्राणाधार ! श्रीराम ! आप मुझ शरण में आये हुए की रक्षा करें।

उमाकान्त महादेव चिदानन्द गुणाकर।
परिपाहि सदा शम्भो सकलात्मन् महेश्वर ॥१६॥

अर्थ—हे उमाकान्त ! महादेव ! चिदानन्द स्वरूप ! हे सर्व गुण सम्पन्न ! सर्वात्मन ! महेश्वर ! हे शम्भो ! आप सर्वदा मेरी रक्षा करें।

* श्री जगदीश नीराजन स्तोत्रम् *

ॐ जय जगदीश हरे, स्वामी जय जगदीश हरे।
भक्तजनों के सङ्कट क्षण में दूर करे ॥ ॐ जय जगदीश हरे
जो ध्यावै फल पावै, दुःख विनशै मन का। स्वामी दुःख
सुख सम्पति घर आवै २ कष्ट मिटै तन का ॥ ॐ जय···
मातु पिता तुम मेरे, शरण गहूँ किसकी। स्वामी शरण
तुम बिन और न दूजा २ आश करूँ जिसकी ॥ ॐ जय···
तुम पूरण परमात्मा, तुम अन्तर्यामी। स्वामी तुम···
पारब्रह्म परमेश्वर २ तुम सबके स्वामी ॥ ॐ जय···
तुम करुणा के सागर, तुम पालन करता। स्वामी तुम···
मैं मूरख खल कामी २ कृपा करो भरता ॥ ॐ जय···

तुम हो एक अगोचर, सबके प्राणपती । स्वामी सबके···
किस विधि मिलूँ दयामय तुमसे मैं कुमती ॥ ॐ जय···
दीनबन्धु दुःख हरता, तुम रक्षक मेरे । स्वामी तुम···
करुणा हस्त बढ़ाओ २ शरण पड़ा तेरे ॥ ॐ जय···
विषय विकार मिटाओ, पाप हरो देवा । स्वामी पाप···
श्रद्धा भक्ति बढ़ाओ २ सन्तन की सेवा ॥ ॐ जय···

जय जगदीश हरे स्वामी जय जगदीश हरे ।
भक्त जनों के सङ्कट २ क्षण में दूर करे ॥
॥ ओऽम् जय जगदीश हरे ॥

❀ अथ वन्दना ❀

सजयति सिन्धुरवदनो देवो यत्पादपङ्कजस्मरणम् ।
वासरमणिरिव तमसां राशिं नाशयति विघ्नानाम् ॥१॥

अर्थ—अन्धकार के नाशक सूर्य के समान जिनके चरण कमलों का स्मरण विघ्नों की राशि को नाश करता है उन गजमुख गणेश जी की जय हो जय हो जय हो ॥१॥

वेदोदधिं समुन्मथ्य ज्ञानरत्नं समुद्धृतम् ।
येन तस्मै वशिष्ठाय गुरवे नमः ॥२॥

अर्थ—जिन्होंने वेद रूपी समुद्र को सद्बुद्धि रूपी मथानी से मथकर ज्ञान रूपी रत्न को निकाला है। उन गुरुओं के भी गुरु ज्ञानमूर्ति वशिष्ठ जी के लिए नमस्कार है ॥२॥

यमिह कारुणिकं शरणं गतो;
ह्यरि सहोदर आप महत्पदम् ।
तमहमाशु हरिं परमाश्रये;
जनकजाङ्कमनन्त सुखाकृतिम् ॥३॥

अर्थ—इस लोक में जिन परम कारुणिक भगवान् की शरण को प्राप्त कर अरि सहोदर (विभिषण) ने सुनिश्चिन्त राज्य पद को प्राप्त किया एवं जिनके वामाङ्क में जगन्माता जनकनन्दिनी सीता जी विराजमान हैं, उन अनन्त सुखरूप भगवान् श्री हरिरूप राम जी की मैं शरण लेता हूँ ॥३॥

जयति रघुवंशतिलकः; कौशिल्याहृदयनन्दनोरामः ।
दशवदननिधनकारिः; दाशरथिः पुण्डरीकाक्षः ॥४॥

अर्थ—रघुवंश शिरोमणिः, कौशल्या के हृदय को आनन्दित करने वाले, राक्षस-राज रावण का संहार करने वालें, महाराज दशरथ जी के पुत्र कमल नयन श्री राम जी की जय हो ॥४॥

नारायणं पद्मभवं वशिष्ठं,
शक्तिं च तत्पुत्र पराशरं च ।
व्यासं शुक्रं गौडपदं महान्तं,
गोविन्द योगीन्द्र मथास्य शिष्यम् ॥

श्री शंकराचार्य मथास्य पद्म,
पादं च हस्तामलकं च शिष्यम् ।
तं तोटकं वार्तिक कार मन्यान,
स्मद् गुरून् सन्तत मानतोऽस्मि ॥१॥

अर्थ—आदि गुरु नारायण को, ब्रह्मा जी को, वशिष्ठ जी को, शक्ति को, उनके पुत्र पराशर जी को, व्यास जी को, शुकदेव जी को, महान गौड पादाचार्य को, योगीश्वर गोविन्द भगवतपाद को, तदनन्तर उनके शिष्य शङ्कराचार्य जी को, फिर उनके शिष्य पद्म-पादाचार्य, हस्तामलकाचार्य, तोटकाचार्य तथा वार्तिककार श्री सुरेश्वराचार्य को एवं परम्परा प्राप्त अपने अन्य गुरुजनों को मैं सतत नमस्कार करता हूँ।

श्रुति स्मृति पुराणानामालयं करुणालयं ।
नमामि भगवत्पादं शंकरं लोक शंकरम् ॥२॥

अर्थ...वेद, स्मृति तथा पुराणों के ज्ञान भंडार, दयासागर लोकों का कल्याण करने वाले भगवत्पाद श्री शङ्कराचार्य जी को प्रणाम करता हूँ।

शंकरं शंकराचार्यं केशवं वादरायणं ।
सूत्र भाष्य कृतौ वन्दे भगवन्तौ पुनः पुनः ॥३॥

अर्थ—ब्रह्मसूत्र के रचयिता नारायणावतार भगवान् व्यास जी को तथा श्री शंकरावतार भाष्यकार भगवान् शङ्कराचार्य जी को बारम्बार प्रणाम करता हूँ।

॥ इति वन्दना समाप्ता ॥

"अथ नीराजन विधि":

आदौ चतुःपादतलैकदेशे द्वैनाभिदेशे सकृदास्य मण्डले ।
सर्वाङ्ग देशेषु च सप्तवारमारार्तिकं भक्तजनः प्रकुर्यात् ॥१॥

अर्थ—भगवद्भक्तों को चाहिये कि सर्व प्रथम भगवान् के चरणों में ४ चार बार, नाभि स्थान में २ दो बार, मुख-मण्डल में १ एक बार और सर्वाङ्ग में ७ सात बार के क्रम से आरती करें।

❀ अथ श्री शिवनीराजन स्तोत्रम् ❀

हरिः ओऽम्

योददाति सतां शम्भुः कैवल्यमपि दुर्लभम्;
खलानां दण्डकृद्योऽसौ शङ्करः शं तनोतु मे ॥१॥

ॐ जय गङ्गाधर हर शिव जय गिरिजाधीशः;
शिव जय गिरिजाधीशः त्वं मां पालयनित्यं
त्वं मां पालय नित्यं; कृपया जगदीश ॥१॥

॥ ॐ हर हर हर महादेव ॥

कैलासे गिरिशिखरे, कल्पद्रुम विपिने । शिव कल्प ।
गुञ्जति मधुकर पुञ्जे २ कुञ्जवने गहने ॥ ॐ हर हर हर महा०
कोकिल कूजति खेलति, हंसावन ललिता । शिव हंसा ।
रचयति कलाकलापं २ नृत्यति मुद सहिता ॥ ॐ हर हर हर महा०

नग्मिल्ललित सुदेशे, शालामणि रचिता । शिव शाला ।
तन्मध्ये हर निकटे २ गौरी मुद सहिता ॥ ॐ हर हर हर महा०
क्रीडां रचयति भूषां, रञ्जितनिजमीशम् । शिव रञ्जित ॥
ब्रह्मादिक सुरसेवित २ प्रणमति ते शीर्षम् ॥ ॐ हर हर हर महा०
विबुधवधूर्बहुनृत्यति, हृदये मुद् सहिता । शिव हृदये ।
किन्नर गानं कुरुते २ सप्तस्वर सहिता ॥ ॐ हर दर हर महा०
धिनकत थै-थै, धिनकत, मृदङ्ग वादयते । शिव मृदङ्ग ।
क्वण क्वण ललिता वेणु २ मधुरं नादयते ॥ ॐ हर हर हर महा०
रुण रुण चरणे रचयति, नूपुरमुज्ज्वलितं । शिव नूपुर ।
चक्रावर्ते भ्रमयति २ कुरुते तां धिक्ताम् ॥ ॐ हर हर हर महा०
तां तां लुप चुप चालं, तालं नादयते । शिव तालं ।
अङ्गुष्ठाङ्गुलिनादं २ लस्यकतां कुरुते ॥ ॐ हर हर हर महा०
कर्पूर द्युति गौरं, पञ्चानन सहितं । शिव पञ्चानन ।
त्रिनयन शशिधर मौलि२ विषधर कण्ठयुतम् ॥ ॐ हर हर हर महा०
सुन्दरजटाकपालं, पावक युत भालम् । शिव पावक ।
डमरू शूल पिनाकं २ करधृत नृकपालम् ॥ ॐ हर हर हर महा०
शङ्ख निनादं कृत्वा, झल्लरि नादयते । शिव झल्लरि ।
नीरायते ब्रह्मा २ वेदऋचां पठते ॥ ॐ हर हर हर महा०
इतिमृदु चरणसरोजं, हृदिकमले धृत्वा । शिव हृदि ।
अवलोकयति महेशं २ ईशं अभिनत्वा ॥ ॐ हर हर हर महा०
रुण्डरचित उरमाला, पन्नगमुपवीतं । शिव पन्नग ,
वाम विभागे गिरिजा२ रूपं अति ललितम् ॥ ॐ हर हर हर महा०

सकल शरीरे मनसिज, कृत भस्माभरणम् । शिव कृत ।
इति वृषभध्वज रूपं २ तापत्रय हरणम् । ॐ हर हर हर महा०
ध्यानं आरति समये, हृदये इति कृत्वा । शिव हृदये ।
रामं त्रिजटानाथं २ ईशं अभिनत्वा ॥ ॐ हर हर हर महा०
इति सङ्गीतं नित्यं, पठनं यः कुरुते शिव पठनं यः ।
शिव सायुज्यं गच्छति२ भक्त्या यः शृणुते । ॐ हर हर हर महा०

॥ इति शिव नीराजन स्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

❀ अथ मंत्र पुष्पाञ्जलिः ❀

ॐ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्म्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते हनाकम्महिमान-सचन्त यत्र पूर्वे साद्ध्या सन्ति देवाः ॥
ॐ राजाधिराजाय प्रसह्य साहिने नमो वयं वैश्रवणाय कुर्महे
स मे कामान् काम कामाय मह्यम् । कामेश्वरोवैश्रवणो ददातु ॥
कुबेराय वैश्रवणाय । महाराजाय नमः ॥

ओऽम् स्वस्ति साम्राज्यं भौज्यं स्वाराज्यं वैराज्यं-
पारमेष्ठ्यं राज्यं महाराज्यमाधिपत्यमयं
समन्त पर्यायी स्यात्सार्वभौमः सार्वायुष
आन्तादापरार्धात् पृथिव्यै समुद्र पर्य-
न्ताया एकराडिति । तदप्येष श्लोकोऽ

भिगीतो मरुतः परिवेष्टारो मरुत्तस्या—
वसन्गृहे । आविक्षितस्य काम—
प्रेर्विश्वेदेवाः सभासद इति ।

ॐ विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात् ।
सम्बाहुभ्यान्धमति सम्पतत्रैर्द्यावभूमी जनयन् देवएकः ॥

नाना सुगन्धि पुष्पाणि ऋतुकालोद्भवानि च ।
पुष्पाञ्जलि प्रदानेन देहि मे हीप्सितं वरम् ॥१॥
नाना कुसुम सम्भूतं प्रमोदित दिगन्तरम् ।
गन्धाद्यैरर्चितं शम्भो गृहाणकुसुमाञ्जलिम् ॥२॥
सेवन्तिका बकुल चम्पक पाटलाब्जैः;
पुन्नाग जाति करवीर रसाल पुष्पैः ।
बिल्वप्रवाल तुलसी दल मञ्जरीभि-
स्त्वां पूजयामि परमेश्वर मे प्रसीद ॥

॥ इति पुष्पाञ्जलिः ॥

"अथ प्रदक्षिणामन्त्रः

पदेपदे वा परिपूजकेभ्यः;
सद्योऽश्वमेधादिफलं ददाति ।
तां सर्वपापक्षयहेतु भूतां;
प्रदक्षिणां ते परितः करोमि ॥१॥

॥ स्तुतिपाठ ॥

नान्यंवदामि न शृणोमि न चिन्तयामि;
नान्यंस्मरामि न भजामि न चाश्रयामि ।
स्मृत्वा त्वदीयं चरणाम्बुजमादरेण,
मां त्राहि देव ! कृपया मयि देहिसिद्धिम् ॥१॥

निरावलम्बस्य ममावलम्बं;
विपाटिताशेषविपत्कदम्बम् ।
मदीय पापाचलपात शं बं;
प्रवर्ततां वाचि सदैव बं बम् ॥२॥

१—"प्रातः शिवार्चने देवि दश कार्या प्रदक्षिणा। मध्याह्ने द्वादश ह्येका सायाह्ने सादरं दश" इति शिव रहस्ये॥ अर्थ—शिवजी बोले—हे देवि प्रातः कालीन शिवार्चन में १० बार, दोपहर में १२ बार और सायंकाल के शिवार्चन में ११ बार प्रदक्षिणा करनी चाहिये॥

* प्रार्थना *

शिवं शान्तं शुद्धं प्रकटमकलङ्कं श्रुतितनुं,
महेशानं शम्भुं सकलसुरसंसेव्यचरणम् ।
गिरीशं गौरीशं भवभयहरं निष्कलमजं
महादेवं वन्दे प्रणतजनतापोप्रशमनम् ॥३॥

त्वमेकः शुद्धोऽसि त्वयिनिगमवाह्यामलमयं
प्रपञ्चं पश्यन्ति भ्रमपरवशाः पापनिरताः ।
बहिस्तेभ्यः कृत्वा स्वपदशरणं मां नय विभो,
शरण्यं त्वां प्राप्तस्तवचरणसेवासुनिरतः ॥४॥

कदाऽहं भो शम्भो नियतमनसा त्वां हर भजन्,
अभद्रे संसारे ह्यनवरतदुःखैतिविरसः ।
लभेयं तां शान्तिं परममुनिभिर्या ह्यधिगता,
दयां कृत्वा मे त्वं वितरसुखशान्तिं भय हर ॥५॥

॥ अथ शिवमानस पूजा ॥

रत्नैः कल्पितमासनं हिमजलैः स्नानं च दिव्याम्बरं,
नानारत्नविभूषितंमृगमदामोदांकितं चन्दनम् ।
जाती चम्पक बिल्वपत्ररचितं पुष्पं च धूपं तथा,
दीपं देव ! दयानिधे ! पशुपते ! हृत्कल्पितं गृह्यताम् ॥१॥

अर्थ—हे देव ! हे दया निधे ! हे पशुपते ! रत्नजड़ित सिंहासन, शीतोंदक से स्नान, अनेक प्रकार के रत्नों से विभूषिन दिव्य कौशेय वस्त्र, कस्तूरी की गन्ध से सुवासित मलया गिरि का चन्दन, जूही, चम्पा आदि पुष्पों, बिल्वपत्र तथा धूप दीप आदि सामग्रियों के द्वारा रची हुई मानसिक पूजा को प्रसन्नसा पूर्वक ग्रहण कीजिये ॥१॥

सौवर्णे नवरत्नखण्डरचिते पात्रे घृतं पायसं,
भक्ष्यं पञ्चविधं पयोदधियुतं रम्भाफलं पानकम् ।
शाकानामयुतं जलं रुचिकरं कर्पूरखण्डोज्ज्वलं,
ताम्बूलं मनसा मया विरचितं भक्त्याप्रभो ! स्वीकुरु ॥२॥

हे प्रभो ! मैंने नवीन रत्नों के खण्डों से निर्मित सोने के पात्र में घृत मिश्रित खीर, दूध और दही के सहित पाँच प्रकार के खाद्य पदार्थ, केला के फल, शर्बत, दश सहस्र अर्थात् अनेकों शाक, कपूर से सुवासित रुचि को बढ़ाने वाला पवित्र जल और ताम्बूल सभी उपकरण मन से भक्ति पूर्वक रच कर प्रस्तुत किये हैं; कृपया इन्हें स्वीकार कीजिये ॥२॥

छत्रं चामरयोर्युगंव्यजनकं चादर्शकं निर्मलं,
वीणाभेरि मृदंग काहलकला गीतं च नृत्यं तथा ।
साष्टांग प्रणतिः स्तुतिर्बहुविधा ह्येतत्समस्तं मया,
सङ्कल्पेन समर्पितं तव विभो पूजां गृहाण प्रभो ॥३॥

हे प्रभो ! स्वर्णछत्र, दो चँवर, पंखा, स्वच्छदर्पण, वीणा, भेरी मृदंग, दुन्दुभी (नगाड़ा) के बाजे, गान और नृत्य तथा साष्टांग प्रणाम, विविध विध मनोहर स्तुति ये सभी संकल्पित ही पूजोपहार मैंने आपको समर्पण किये हैं ! हे सर्व व्यापी भगवन् ! कृपया इन्हें स्वीकार कीजिये ॥३॥

आत्मा त्वं गिरिजामतिः सहचराः प्राणाः शरीरंगृहं,
पूजा ते विषयोपभोगरचना निद्रासमाधिस्थितिः ।
सञ्चारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरो,
यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो ! तवाराधनम् ॥४॥

हे शम्भो ! आप तो साक्षात् आत्मा हैं, बुद्धि रूप से माता पार्वती जी विराजमान हैं, प्राण ही आपके सहचर गण हैं, पञ्चभौतिक स्थूल शरीर ही आपका निवास गृह अर्थात् मन्दिर है, अनेक प्रकार के विषय भोगों की रचना ही आपकी षोड़शोपचार पूजा है, निद्रा ही परम समाधि की स्थिति है, पैरों द्वारा जहाँ-जहाँ गमनागमन करना ही सर्वत्र व्यापक आप

की परिक्रमा है और मुख से निकलने वाले प्रत्येक शब्द मात्र ही आपके स्तोत्रों का पाठ है, इस प्रकार अहर्निशि मैं जो भी कर्म करता हूँ वह सब आपकी आराधना ही तो है ॥४॥

करचरणकृतं वाक्कायजं कर्मजं वा,
श्रवण नयनजं वा मानसं वापराधम् ।
विदितमविदितं वा सर्वमेतत्क्षमस्व,
जय जय करुणाब्धे श्री महादेव शम्भो ! ॥५॥

अर्थ—प्रभो ! मैंने अपने हाथों से, पैरों से, वाणी से, शरीर से, कर्मों से, कानों से, नेत्रों से अथवा मन से जो भी विदित अथवा अविदित अपराध किये हों उन सब को आप क्षमा कीजिये। हे करुणासिन्धु श्री महादेव शम्भो ! आपकी जय हो, जय हो ॥५॥

॥ श्री शिवपञ्चाक्षर स्तोत्रम् ॥

नागेन्द्रहाराय त्रिलोचनाय;
भस्माङ्गरागाय महेश्वराय ।
नित्याय शुद्धाय दिगम्बराय;
तस्मै "न" काराय नमः शिवाय ॥१॥

अर्थ—जो शेष नाग को हार रूप से पहनने, वाले सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि रूपी तीन नेत्रों को धारण करने वाले, भस्म का

अनुलेपन करने वाले, दिशा रूपी वस्त्रों को धारण करने वाले, नित्य, शुद्ध, महेश्वर हैं। उन "नकार" स्वरूप शिवजी के लिये नमस्कार है ॥१॥

मन्दाकिनीसलिलचन्दनचर्चिताय
नन्दीश्वरप्रमथनाथमहेश्वराय ।
मन्दारपुष्पबहुपुष्पसुपूजिताय;
तस्मै "म" काराय नमः शिवाय ॥२॥

अर्थ—जो गंगाजल के चन्दन से सुवासित होने वाले, मन्दार आदि अनेक पुष्पों से भली भाँति पूजित होने वाले, नन्दीश्वर और प्रमथ गणों के स्वामी हैं, उन "मकार" स्वरूप शिवजी के लिए नमस्कार है ॥२॥

शिवाय गौरीवदनाब्जवृन्द-
सूर्याय दक्षाध्वरनाशकाय ।
श्री नीलकण्ठाय वृषध्वजाय;
तस्मै "शि" काराय नमः शिवाय ॥३॥

जो परम कल्यात्र रूप, पार्वती जी के मुख कमल को प्रफुल्लित करने के लिए सूर्य रूप, दक्ष प्रजापति के यज्ञ विध्वंसक, बैल की ध्वजा वाले हैं, उन श्री नीलकण्ठ "शिकार" रूप शिवजी के लिए नमस्कार है ॥३॥

वसिष्ठ कुम्भोद्भव गौतमार्य;
मुनीन्द्र देवार्चित शेखराय ।
चन्द्रार्क वैश्वानर लोचनाय;
तस्मै "व" कारायं नमः शिवाय ॥४॥

अर्थ—वसिष्ठ, अगस्त्य और गौतम आदि श्रेष्ठ मुनियों तथा इन्द्र आदि देवताओं द्वारा जिनका मस्तक पूजा जाता है, चंद्रमा, सूर्य और अग्नि जिनके नेत्र हैं उन "वकार" स्वरूप शिवजी के लिये नमस्कार हे ॥४॥

यक्ष स्वरूपाय जटाधराय;
पिनाक हस्ताय सनातनाय ।
दिव्याय देवाय दिगम्बराय;
तस्मै "य" काराय नमः शिवाय ॥५॥

यक्ष रूप धारण करने वाले, जटाधारी हाथ में पिनाक धारण करने वाले, जो सनातन दिव्य देव हैं, उन दिगम्बर वेशधारी "मकार" स्वरूप शिवजी के लिए नमस्कार है ॥५॥

पञ्चाक्षरमिदं पुण्यं यः पठेच्छिव सन्निधौ ।
शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते ॥६॥

जो श्रद्धालु भक्त इस पवित्र पञ्चाक्षर को भगवान् शङ्कर जी के समीप बैठकर पाठ करता है, वह साक्षात् शिव लोक को प्राप्त होता है, और वहाँ शिवजी के साथ आनन्द मनाता है ॥६॥

॥ इति श्री मच्छङ्कराचार्य विरचितं शिव पञ्चाक्षर स्तोत्रं सम्पूर्ण ॥

❀ स्तोत्रम् ❀

पशुपतिं द्युपतिं धरणीपतिं भुजगलोकपतिं च सतीपतिम् ।
प्रणतभक्तजनार्तिहरं परं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ॥१॥

अरे मनुष्यों ! जो सर्व जीवों, स्वर्ग लोक, पृथ्वी लोक और नाग लोक के पति हैं, दक्ष की कन्या सती जी के प्राणपति हैं, शरणागत भक्त जनों के दुःख हरने वाले परम पुरुष हैं, उन पार्वती–वल्लभ शङ्कर जी को भजो ॥१॥

न जनको जननी न च सोदरो न तनयो न च भूरिबलं कुलम् ।
अवतिकोऽपिन कालवशंगतंभजत से मनुजा गिरिजापतिम् ।२।

हे मानवो ! काल के गाल में ग्रसे हुए जीव की पिता, माता, भाई, बेटा, अत्यन्त बल और उत्तम कुल आदि में से कोई भी रक्षा करने में समर्थ नहीं हैं, अतएव तुम, सभी की मोह माया छोड़कर गिरिजापति महादेव जी को भजो ॥२॥

मुरजडिण्डिमवाद्यविलक्षणं मधुरपञ्चमनादविशारदम् ।
प्रथमभूत गणैरपि सेवितं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ॥३॥

हे मनुष्यो ! जो मृदङ्ग और डमरू बजाने में प्रवीण और मीठे–मीठे पञ्चम स्वर के गायन में परम चतुर हैं तथा प्रमथ और भूत गणों द्वारा सुसेवित हैं, उन गिरिजापति को भजो ॥३॥

शरणदंसुखदं शरणान्वितं शिव शिवेति शिवेति नतं नृणाम् ।
अभयदं करुणावरुणालयं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ॥४॥

हे मानवो ! जो शरणागतों को शरण प्रदान करने वाले, सुखप्रद और अभय दान देने वाले हैं तथा मनुष्य जिन्हें शिव ! शिव ! शिव ! कह कर प्रणाम करते हैं, उन दया सिन्धु गिरिजापति को भजो ॥४॥

नरशिरोरचितं मणिकुण्डलं भुजगहारमुदं वृषभध्वजम् ।
चितिरजोधवलीकृतविग्रहं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ॥५॥

अरे मनुष्यों ! तुम वृषभ-ध्वजाधारी उन गिरिजापति का भजन करो जो कानों में नरमुण्ड रचित मणियों का कुण्डल धारण करने वाले और गले में सर्पों की माला को पहिन कर ही प्रसन्न रहने वाले हैं तथा जिनका शरीर चिता की रज से अनुरञ्जित रहता है ॥५॥

मखविनाशकरं शशिशेखरं सततमध्वरभाजि फलप्रदम् ।
प्रलयदग्धसुरासुरमानवं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ॥६॥

अरे मनुष्यों ! उन पार्वती-पति का भजन करो जो दक्ष का यज्ञ विध्वंस करने वाले, मस्तक में चन्द्रमा को धारण करने वाले, यज्ञ करने वालों को सतत फलप्रद और प्रलयाग्नि में देव-दानव तथा मानवों को दग्ध करने वाले हैं ॥६॥

मदमपास्य चिरं हृदि संस्थितं मरणजन्मजराभयपीड़ितम् ।
जगदुदीक्ष्य समीपभयाकुलं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ।७।

ऐ मनुष्यों ! संसार को जन्म, जरा और मरण के भय से पीड़ित तथा समीप में उपस्थित भय से व्याकुल देखकर हृदय में चिरकाल के सञ्चित मद को त्याग कर उन गिरिजापति को भजो ।।७।।

हरि विरिञ्चिसुराधिपपूजितं यमजनेशधनेशनमस्कृतम् ।
त्रिनयनं भुवनत्रितयाधिपं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ।।८।।

हे मनुष्यों ! उन गिरिजापति का भजन करो जो विष्णु, ब्रह्मा और इन्द्र से भी पूजित, यमराज, नरराज, धनराज से नमस्कार किये जाने वाले, तीन नेत्र वाले और त्रिभुवनपति हैं ।।८।।

पशुपतेरिदमष्टकमद्भुतं विरचितं पृथिवीपतिसूरिणा ।
पठति संश्रृणुते मनुजः सदा शिवपुरीं वसते लभते मुदम् ।।९।।

जो मनुष्य पृथ्वीपति सूरि द्वारा रचे गये इस अनोखे पशुपत्याष्टक का सदा पाठ तथा श्रवण करता है वह शिवपुरी में निवास करता है और आनन्द को प्राप्त होता है ।।९।।

❋ शिव ताण्डव स्तोत्रम् ❋

जटाटवीगलज्जलप्रवाहपावितस्थले;
गलेऽवलम्ब्य लम्बितां भुजङ्गतुङ्गमालिकाम् ।
डमड्-डमड्-डमड् डमन्निनादवड्डमर्वयं;
चकार चण्डताण्डवं तनोतु नः शिवः शिवम् ॥१॥

जिन्होंने जटारूपी बन से निकले हुए गङ्गाजल के प्रवाह से पवित्र कण्ठ देश में लटकती हुई सर्पों की माला को धारण कर डमरू की डम्-डम्-डम्-डम् ध्वनि से युक्त प्रचण्ड नृत्य किया वे शिवजी हमारे कल्याण को बढ़ावें ॥१॥

जटाकटाहसम्भ्रमं भ्रमन्निलिम्पनिर्झरी;
विलोलवीचिवल्लरीविराजमान मूर्द्धनि; ।
धगद् धगद् धगज्ज्वलल् ललाटपट्ट पावके;
किशोरचन्द्रशेखरे रतिः प्रतिक्षणं मम ॥२॥

जिनके मस्तक पर जटारूपी कड़ाही में वेग से घूमती हुई गङ्गा की चपल लहरी रूपी लतायें विराजमान हैं भाल पट्ट पर धक्-धक्-धक् शब्द करती हुई अग्नि की ज्वाला जल रही हैं और मस्तक पर द्वितीया का चन्द्रमा चमचमा रहा है, उन भगवान् शङ्कर में मेरी प्रतिक्षण प्रीति हो ।।२॥

धराधरेन्द्रनन्दिनी विलास बन्धु बन्धुर;

स्फुरद्दिगन्तसन्तति प्रमोदमानमानसे ।

कृपाकटाक्षधोरणी निरुद्धदुर्धरापदि;

क्वचिच्चिदम्बरे मनो विनोदमेतु वस्तुनि ॥३॥

गिरिराज कन्या पार्वती के विलास कालीन मनमोहक चूड़ामणि की प्रखर कान्ति से देदीप्यमान दिशायें जिनके मन को हर्षित करती हैं और घोर आपत्तियाँ भी जिनकी कृपाकटाक्ष मात्र से ही निवृत्त हो जाती हैं, ऐसे किसी चैतन्याकाश रूप वस्तु तत्त्व में मेरा मन विनोद करे ॥३॥

जटाभुजङ्गपिङ्गलस्फुरत्फणामणिप्रभा;

कदम्बकुंकुमद्रवप्रलिप्तदिग्वधूमुखे ।

मदान्धसिन्धुरस्फुरत्त्वगुत्तरीयमेदुरे;

मनोविनोदमद्भुतं बिभर्तु भूतभर्तरि ॥४॥

जिनके जटावेष्टित सर्पों के फणों की मणियों का बिखरता हुआ पिङ्गल प्रकाश–पुञ्ज दिगङ्गनाओं के मुख पर कुंकुम राग का लेपन कर रहा है, मतवाले हाथी के फरफराते हुए चमड़े के दुपट्टे से अति चिकने हुए उन भूतनाथ में मेरा मन अद्भुत विनोद करे ॥४॥

सहस्रलोचनप्रभृत्यशेषलेखशेखर;

प्रसूनधूलिधोरणीविधूसराङ्घ्रिपीठभूः ।

भुजङ्गराजमालया निबद्धजाटजूटकः;

श्रियै चिरायजायतां चकोरबन्धुशेखरः ॥५॥

अर्थ—इन्द्र आदि समस्त देवों के मस्तक में पहिने हुए पुष्पों की धूलि से जिनकी चरण पादुकायें धूसरित हैं, शेष नाग की माला मे बँधी जटाजूट वाले वे चन्द्रशेखर भगवान् मेरे लिए चिर-स्थायी लक्ष्मी का विधान करें ॥५॥

ललाटचत्वरज्वलद्धनञ्जयस्फुलिंगभा-

निपीतपञ्चसायकं यमन्निलिम्पनायकम् ।

सुधामयूखलेखया विराजमानशेखरं;

महाकपालि सम्पदे शिरो जटालमस्तु नः ॥६॥

ललाट रूपी वेदी पर जलती हुई अग्नि की चिनगारियों की लपट से जिन्होंने कामदेव को भस्म कर डाला, देवराज इन्द्र भी जिन्हें नतमस्तक होते है, चन्द्रमा की कला से विभूषित वह विशाल कपाल वाला जटाधारी शिर हमारी सम्पत्ति के लिए हो ॥६॥

करालभालपट्टिकाधगद्धगद्धगज्ज्वलद् ;

धनञ्जयाहुतीकृतप्रचण्डपंचसायके ।

धराधरेन्द्रनन्दिनीकुचाग्रचित्रपत्रक-

प्रकल्पनैकशिल्पिनी त्रिलोचने मतिर्मम ॥७॥

जिन्होंने अपने विकराल भाल भट्ट पर धक्-धक्-धक् जलती हुई अग्नि में प्रचण्ड कामदेव को हवन कर दिया और जो शैलेन्द्र पुत्री पार्वती के कुचाग्र भाग पर पत्रभङ्गिमा की सुन्दर रचना करने में एकमात्र चतुर कारीगर हैं, उन भगवान त्रिलोचन में ही मेरी बुद्धिवृत्ति लगी रहे ॥७॥

नवीनमेघमण्डलीनिरुद्धदुर्धरस्फुरत् ;

कुहूनिशीथिनीतमः प्रबन्धबद्धकन्दरः ।

निलिम्पनिर्झरीधरस्तनोतु कृत्तिसिन्धुरः;

कलानिधानबन्धुरः श्रियं जगद्धुरन्धरः ॥८॥

जिनका कण्ठ नूतन मेघों की मण्डली से घिरी हुई अमावस्या की अर्द्ध रात्रि में फैले हुए घने अन्धकारवत् श्यामता से युक्त है, वे गंगाधर, गज चर्मधारी, चन्द्रमौलि, संसार–भारवाही मेरी लक्ष्मी को बढ़ावें ॥८॥

प्रफुल्लनीलपङ्कज प्रपञ्चकालिमच्छटा;

विडम्बि कण्ठ कन्धरा रुचि प्रबन्ध कन्धरम् ।

स्मरच्छिदं पुरच्छिदं भवच्छिदं मखच्छिदं;

गजच्छिदान्धकच्छिदं तमन्तकच्छिदं भजे ॥९॥

जिनका कण्ठ प्रदेश सुन्दर खिले हुए नीले कमलाकरों की काली छटा का अनुकरण करने वाले काले बादलों की सी शोभा वाले गरल चिह्न से विभूषित है तथा जो कामदेव, त्रिपुरासुर, संसार (जन्म-मरण रूप), दक्ष के यज्ञ, हाथी, अन्धकासुर और यमराज के भी विनाशक हैं, उनको मैं भजता हूँ ।।९।।

अगर्वसर्वमङ्गला कलाकदम्बमञ्जरी;
रसप्रवाहमाधुरी विजृम्भणामधुव्रतम् ।
स्मरान्तकं पुरान्तकं भवान्तकं मखान्तकम् ;
गजान्तकान्धकान्तकं तमन्तकान्तकं भजे ।।१०।।

जो गर्व रहित पार्वती की कला रूपी कदम्ब मञ्जरी के रस-प्रवाह को प्रवृद्ध मधुरिमा का पान करने वाले मानो भ्रमर हैं तथा कामदेव, त्रिपुर, भव, दक्ष–यज्ञ, हाथी, अन्धकासुर और यमराज के भी यमराज हैं, उन्हे मैं भजता हूँ ।।१०।।

जयत्वदभ्रविभ्रमं भ्रमद्भुजङ्गमस्फुरत् ;
धगद् धगद् विनिर्गमत् करालभालहव्यवाट् ।
धिमिद् धिमिद् धिमिद् ध्वनन् मृदङ्गतुङ्ग मङ्गल;
ध्वनिक्रमप्रवर्तितः प्रचण्डताण्डवः शिवः ।।११।।

जिनके विकराल ललाट की अग्नि प्रचण्ड वेग से घूमते हुए विषाक्त भुजङ्ग की भयङ्कर फुफ्कार से धधकती हुई निकला करती है, धिमि-धिमि-धिमि ध्वनि करते हुए मृदङ्ग के उच्च

माङ्गलिक स्वर के क्रमानुसार जिनका प्रचण्ड ताण्डवनृत्य हो रहा है उन मंगलमूर्ति भगवान् शिव की जय हो ॥११॥

दृषद् विचित्रतल्पयोर्भुजङ्गमौक्तिकस्रजो-
गरिष्ठरत्नलोष्ठयो; सुहृद्विपक्षपक्षयोः ।
तृणारविन्दचक्षुषोः प्रजामहीमहेन्द्रयोः;
समं प्रवर्तयन् मनः कदा सदाशिवं भजे ॥१२॥

पत्थर और विचित्र रंग बिरंगी शय्या में, सर्प और मुक्तामणि की माला में, अमूल्य रत्न तथा मिट्टी के ढेले में सुहृद और शत्रु के पक्ष में, तृण और कमल नयनी बाला में, प्रजा और भूपति में, मन को समभाव रखता हुआ मैं सदा शिव को कब भजूंगा ॥११॥

कदा निलिम्पनिर्झरीनिकुञ्जकोटरे वसन्;
विमुक्तदुर्मतिः सदा शिरःस्थमञ्जलिं वहन् ।
विमुक्तलोललोचनो ललामभाललग्नकः;
शिवेति मन्त्रमुच्चरन् कदा सुखी भवाम्यहम् ॥१३॥

कब गंगा जी के तटवर्ती लतादिकों से आच्छादित निकुञ्ज की कुटी के भीतर निवास करता हुआ अपने कुविचारों को छोड़कर शिर पर हाथ जोड़ चञ्चलता हीन अश्रुपूर्ण नेत्रों से सुन्दर ललाट वाले भगवान् आशुतोष में दत्तचित्त हो "शिव" इस महामन्त्र का उच्चारण करता हुआ मैं कब सुखी हूँगा ॥१३॥

इमं हि नित्यमेवमुक्तमुत्तमोत्तमं स्तवं;

पठन् स्मरन् ब्रुवन् नरो विशुद्धिमेति सन्ततम् ।

हरे गुरौ सुभक्तिमाशु याति नान्यथा गतिं;

विमोहनं हि देहिनां सुशङ्करस्य चिन्तनम् ॥१४॥

इस प्रकार वर्णन किये गये इस सर्वोत्तम स्तोत्र को नित्य प्रति पढ़ते हुए, स्मरण करते हुए, कहते हुए मनुष्य नित्य निर्मलता को प्राप्त होता है और शीघ्र ही हर गुरु भगवान् शङ्कर में सुदृढ़ भक्ति को प्राप्त कर लेता है। वह कभी भी विरुद्ध गति को नहीं प्राप्त होता। यह सुसत्य है कि भली-भांति किया गया शङ्कर जी का चिन्तन देह धारियों के मोह को नाश करता है ॥१४॥

पूजावसान समये दशवक्त्रगीतं यः शम्भुपूजनमिदंपठति प्रदोषे ।

तस्यस्थिरांरथगजेन्द्र तुरङ्ग युक्तां लक्ष्मीं सदैव सुमुखीं प्रददाति शम्भुः ॥१५॥

जो व्यक्ति सूर्यास्त काल में (प्रदोषो रजनी मुखमित्यमरः) पूजा समाप्त होने पर दशानन के गाये हुए इस शिव पूजन रूप स्तोत्र को पढ़ता है, उसे भगवात् शङ्कर रथ, हाथी, घोड़ों से युक्त सदा ही सुन्दर स्थिर लक्ष्मी को प्रदान करते हैं ॥१५॥

॥ इति श्री रावण कृतं शिव ताण्डव स्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

❀ अथ षट्पदी स्तोत्रम् ❀

अविनयमपनय विष्णो ! दमयमनः शमयविषयमृगतृष्णाम् ।
भूतदयां विस्तारय तारय संसार सागरतः ॥१॥

हे सर्व व्यापिन् विष्णो ! मेरी स्वाभाविक उदण्डता को दूर कीजिये, चञ्चल मन का दमन कीजिये, विषयों की मृगतृष्णा को शान्त कीजिये, प्राणियों के प्रति मेरे दया भाव को बढ़ाइये और इस आवागमन रूप संसार-सागर से मेरा उद्धार कीजिये ॥१॥

दिव्यधुनीमकरन्दे परिमल – परिभोग सच्चिदानन्दे ।
श्रीपतिपदारविन्दे भवभयखेदच्छिदे वन्दे ॥२॥

जिन चरणारविन्दों का गङ्गा रूपी मकरन्द (पुष्प रस) सतत प्रवाहित होता रहता है, जिन पादपद्मों की सच्चिदानन्द रूपी सर्वोत्तम सुगन्ध सर्वत्र व्याप्त है और जो संसार के जन्म-मरण रूप भय तथा त्रिविध संतापों को छेदने वाले हैं, उन लक्ष्मी पति के पदारविन्दों की मैं वन्दना करता हूँ ॥२॥

सत्यपि भेदापगमे नाथ ! तवाहं न मामकीनस्त्वम् ।
सामुद्रो हि तरङ्ग क्वचन समुद्रो न तारङ्गः ॥३॥

हे नाथ ! आत्म रूप से आप में और मुझमें लेशमात्र भेद न

होने पर भी यह ध्रुव सत्य है कि मैं हो आपका हूँ, आप मेरे नहीं, क्योंकि जैसे जल दृष्टि से समुद्र और तरङ्ग में कुछ भेद न होने पर भी कल्पित भेद की प्रतीति होती है, फिर भी तरङ्ग समुद्र के ही होते हैं, तरङ्ग का समुद्र कहीं नहीं होता, वैसे ही समष्टि और व्यष्टि रूप औपाधिक भेद प्रतीत होने पर भी वस्तुतः आपसे मेरा अभेद ही है ॥३॥

उद्धृतनग! नगभिदनुज! दनुजकुलामित्र! मित्रशशिदृष्टे।
दृष्टे भवति प्रभवति न भवति किं भवतिरस्कारः ॥४॥

हे गोवर्धन धारिन्! हे इन्द्र के छोटे भाई! (वामन जी) हे असुर कुल के शत्रु! हे सूर्य और चन्द्रमा रूपी नेत्र वाले! आप के स्वरूप का साक्षात्कार हो जाने पर भी क्या जन्म-मरण रूप संसार की निवृत्ति नहीं होती; अपितु हो ही जाती है ॥४॥

मत्स्यादिभिरवतारै रवतारवतावता सदा वसुधाम्।
परमेश्वर! परिपाल्यो भवता भवतापभीतोऽहम् ॥५॥

हे परमेश्वर! मत्स्य, कूर्म, वाराह आदि अनेक अवतार धारण कर निरन्तर धराधाम की रक्षा करने वाले आप के द्वारा इस नित्य नूतनता से भासित होने वाले असार संसार के त्रिविध तापों से अत्यन्त भयभीत हुआ, मैं अवश्य ही रक्षा करने योग्य हूँ ॥५॥

दामोदर ! गुण मन्दिर ! सुन्दरवदनारविन्द ! गोविन्द !
भवजलधिमथनमन्दर ! परमं दरमपनय त्वं मे ॥६॥

हे दामोदर ! हे दिव्यातिदिव्य गुणों के निवास स्थान ! हे सुन्दर मुखारविन्द वाले ! हे गोविन्द ! हे संसार रूपी समुद्र को मथने के लिये साक्षात् मन्दराचलवत् ! कृपया आप मेरे इस संसरण रूप महान् भय को दूर कीजिये ॥६॥

नारायण ! करुणामय ! शरणं करवाणि तावकौ चरणौ ।
इति षट्पदी मदीये वदन सरोजे सदा वसतु ॥७॥

हे नारायण ! हे करुणानिधान ! मैं सर्वतोभावेन आपके युगल-चरण कमलों की शरण ले रहा हूँ और यह पूर्वोक्त षट्पदी (छः पद्य रूपी पैरों की भ्रमरी) स्तोत्र मेरे मुख रूप कमल में सर्वदा निवास करे ॥७॥

॥ इति षट्पदी स्तोत्रं समाप्तम् ॥

शंका समाधान

प्राय: आधुनिक जनता में शिव निर्माल्य प्रसाद भक्षण न करने की अज्ञान जनित भ्रान्ति छाई हुई है। यह उनकी महती भूल है। शिव निर्माल्य प्रसाद भक्षण में तो दोष का लेश भी नहीं। क्योंकि यदि प्रसाद भक्षण में दोष होता तो :—

शिवभक्तः शुचिर्नित्यं सद्व्रती दृढनिश्चयः ।
भक्षयेच्छिवनैवेद्यं त्यजेदग्राह्यभावनाम् ॥

सच्चा विश्वासी एवं दृढ़ निश्चयी शिवभक्त तो नित्य ही पवित्र होता है। अत: उसे हेय बुद्धि त्याग कर श्रद्धा भक्ति पूर्वक शिव नैवेद्य अवश्य भक्षण करना चाहिये, ऐसी आज्ञा शास्त्र प्रदान ही क्यों करता ? इससे यही निर्विवाद सिद्ध होता है कि दोष प्रसाद भक्षण में नहीं, किन्तु निर्माल्य के उल्लङ्घन में है। जिसका :—

मानवो लङ्घयेद्यो हि शिवार्चामनलं जलम् ।
नैवेद्यं पुष्पमन्नं च स गोहत्यां लभेद्ध्रुवम् ॥
(स्कन्दपुराण)

यह सुनिश्चित है कि जो प्राणी शिवार्चा, अग्नि, जल, नैवेद्य, पुष्प और अन्नादि को लाँघ जाता है वह ध्रुवाङ्क ही गोहत्या को प्राप्त होता है। यह देवी भागवतोक्त श्लोक ज्वलन्त

प्रमाण है। क्या भला ? अपने इष्ट देव का पूजन प्रसाद भक्षण न करना भी कोई बुद्धिमानी है और यदि इसे ही आस्तिक भाव कहा जाय तब तो नास्तिकता का कोई प्रश्न ही नहीं उठ सकता। एतदर्थ प्रेमी सज्जनों से तो हमारा यही कहना है कि वे अज्ञान मूलक भ्रान्ति को सर्वतोभावेन तिलाञ्जलि देकर श्रद्धा भक्ति पूर्वक सर्वेश भगवान् भोलेनाथ का प्रसाद अवश्य लिया करें। क्योंकि शिवजी तथा विष्णु जी और शक्ति में परस्पर भेद की गन्ध भी नहीं। इस विषय में प्रमाणभूत कुछ संक्षिप्त श्लोक नीचे दिये जाते हैं, जिनके अध्ययन एवं विचार विमर्श से भेद-भ्रान्ति सर्वदा निर्मूल हो सकती है।

मदीयंभुक्तनिर्माल्यं पादाम्बु कुसुमं जलम् ।
धर्ममर्थश्च कामश्च मोक्षश्च ददते क्रमात् ॥

(स्कन्दपुराण)

अर्थ—भगवान् शङ्कर का कथन है कि मुझे भोग लगाये हुए प्रसाद, चरणोदक, कुसुम और जल को भक्ति-भाव पूर्वक ग्रहण करने वाले श्रद्धालु पुरुष को क्रम से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पदार्थ अनायास ही प्राप्त होते हैं।

हरि नैवेद्यके चैव शिव नैवेद्यके तथा ।
करोतिभेदबुद्धिं यो ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ॥

(देवी भागवत)

अर्थ—भगवान् विष्णु के नैवेद्य में तथा शिव के नैवेद्य में जो मनुष्य भेद बुद्धि करता है वह ब्रह्म हत्या को प्राप्त होता है।

निर्माल्यंदेवदेवस्य चान्द्रायणशताद्वरम् ।
श्रद्धया परया तस्माद् भोक्तव्यं तद्द्विजादिभिः ॥

(स्कन्दपुराण)

अर्थ—सौ चन्द्रायण व्रत करने से जो पुण्य फल प्राप्त होता है वह फल देवाधिदेव भगवान् भोलेश के निर्माल्य को एक बार ही खाने से प्राप्त होता है ! इस कारण से उसे द्विजातिमात्र (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि) को परम श्रद्धापूर्वक भक्षण करना चाहिये ।

ब्रह्महापि शुचिर्भूत्वा निर्माल्यं यस्तु धारयेत् ।
भक्षयित्वाद्भुतं तस्य सर्वपापं प्रणश्यति ॥

(आदित्यपुराण)

अर्थ—कहाँ तक कहा जाय यदि ब्रह्महत्यारा भी पवित्र होकर शिवनिर्माल्य को धारण करे और अद्भुत प्रसाद को भक्षण करे तो उसके भी सम्पूर्ण पाप-पुञ्जों को नष्ट करता है ।

अलं यागसहस्रेणाप्यलं यागार्बुदैरपि ।
भक्षिते शिव नैवेद्ये शिव सायुज्यमाप्नुयात् ॥

(पद्मपुराण)

अर्थ—हजारों यज्ञों तथा अरबों यज्ञों से भी सायुज्यमुक्ति प्राप्त नहीं होती । किन्तु पशुपति शिवजी के तो नैवेद्य भक्षण मात्र से ही सायुज्य प्राप्ति सुलभ होती है । अर्थात् शिव और जीव का अभेद ज्ञान हो जाता है ।

ये शिव द्रोहिणः सन्ति तथा देवी विनिन्दकाः ।
ये विष्णु द्रोहिणः सन्ति पतन्त्यत्रैव ते मुने ॥

(स्कन्दोपनिषद्)

अर्थ—हे मुने ! जो व्यक्ति शिवजी से द्रोह करते हैं तथा परमाराध्या भगवती देवी की निन्दा करते हैं और जो सर्वान्तिर्यामी भगवान् विष्णु से द्रोह करते हैं वे जीते-जी इस लोक में ही पतित हो जाते हैं।

शिवाय विष्णुरूपाय शिवरूपायविष्णवे ।
शिवस्य हृदयं विष्णुर्विष्णोश्च हृदयं शिवः ॥

(स्कन्दोपनिषद्)

अर्थ—शिव जी का हृदय तो भगवान् विष्णु हैं और विष्णु के हृदय भगवान् शङ्कर हैं। अतः विष्णु स्वरूपी भगवान् शिव को तथा शिव स्वरूपी भगवान् विष्णु को नमस्कार है।

यो हरिः स शिवः साक्षाद्यः शिवः स स्वयं हरिः ।
एतयोर्भेदमातिष्ठन्नरकाय भवेन्नरः ॥

(दर्शनोपनिषद्)

अर्थ—जो हरि हैं वही साक्षाद् शिव हैं और जो शिव हैं वही साक्षात् हरि हैं। इन दोनों में भेददर्शी मनुष्य अवश्यमेव नरक गामी होते हैं।

ममास्ति हृदये शर्वो भवतो हृदये त्वहम् ।
आवयोरन्तरंनास्ति मूढा पश्यन्तिदुर्धियः ॥

(पद्मपुराण)

अर्थ—मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् रामजी शिव जी से कहते हैं कि हे भगवन् आप तो सदा मेरे हृदय में निवास करते हैं और आपके हृदय में निरन्तर मैं निवास करता हूँ अर्थात् जो आप हैं वही मैं हूँ और जो मैं हूँ वही आप हो। वस्तुतः हम दोनों में रञ्चक भी भेद नहीं फिर भी दुर्बुद्धि मूढ़जन हम दोनों में भेद देखते हैं।

ये वेदं विदधत्यद्धा आवयोरेकरूपयोः ।
कुम्भीपाकेषु पच्यन्ते नराः कल्पसहस्रकम् ॥

(पद्मपुराण)

अर्थ—समदर्शी भगवान् राम फिर कहने लगे कि जो व्यक्ति साक्षात् हम दोनों के एक ही रूप में भेद कल्पना करते हैं वे लोग सहस्रों कल्प पर्यन्त कुम्भीपाक नाम के घोर नरकों में पचते रहते हैं।

त्रयाणामेकभावानां यो न पश्यति वै भिदाम् ।
सर्वभूतात्मनां ब्रह्मम् स शान्तिमधिगच्छति ॥

(श्री मद्भागवत चतुर्थ स्कन्द)

अर्थ—श्री विष्णु भगवान् दक्ष प्रजापति से कहते हैं कि हे ब्रह्मन् ! जीव मात्र के अन्तरात्मा ब्रह्मा, विष्णु और महेश हम एक रूप त्रिदेवों में जो भेद दृष्टि नहीं रखता वही परम शान्ति को प्राप्त होता है। अन्यथा भेद दर्शी तो जन्म मरण रूप संसार

चक्र से ही भटकता रहता है, उसे स्वप्न में भी शान्ति प्राप्त नहीं होती।

प्राय: ऐसा देखने, सुनने में आ रहा है कि अज्ञ पुरुषों ने यह भी भ्रान्ति डाल दी है कि स्त्रियों को तो भगवान् शङ्कर जी का स्पर्श व पूजन करना ही नहीं चाहिये। परन्तु यह सर्वथा अज्ञान मूलक ही है। भक्ति तो किसी की कोई भी कर सकता है। इसमें किसी का भो पक्षपात नहीं; सभी नर नारियों को समानाधिकार है। होनी चाहिये पूर्ण श्रद्धा एवं अटल विश्वास। इस विषय में सर्व प्रथम विचार की बात तो यह है कि घोर तप के द्वारा शिव को वररूप में प्राप्त कर उनके अर्द्धाङ्ग में नित्य निवास करने वाली भवानी कौन हैं? स्त्री ही तो हैं न! फिर इन भेद भ्रान्ति कारकों का उपर्युक्त कथन कैसा लज्जा जनक एवं हास्यास्पद है। यदि शङ्कर पूजनादि की अधिकारिणी महिलायें नहीं हैं यह कथन किसी भी अंश में सत्य माना जाय तो महादेव का घुष्मेश्वर नाम ही निरर्थक हो जायगा। जिसकी प्रख्याति इस प्रकार है कि :—

दक्षिण देश में घुष्मा नाम की परम शिव भक्ता एक स्त्री अपने पतिदेव के साथ नित्य नियम पूर्वक भगवान् शिव का पूजन करती थी। उसकी अनन्य श्रद्धा और अटल भक्ति से आशुतोष अवढर दानी भगवान् महादेव को प्रसन्न होते देर न लगी। फिर क्या था? तत्काल प्रकट हो उन्होंने घुष्मा देवी को "वरंब्रूहि" कहा—तू यथेष्ट वर माँग। उसने शिव जी को पूर्ण

प्रसन्न देख कर कहा भगवन् यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मेरे नाम से आप यहीं निवास करते हुए भक्तों का कल्याण कीजिये। उसकी हार्दिक कामनानुसार भगवान् शङ्कर जी "घुष्मेश्वर" नाम से वहीं प्रतिष्ठित हुए जिनकी गणना १२ द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों के अन्तर्गत है। भक्तों के बोधार्थं यह शिव पुराणोक्त कथा यहाँ संक्षेप में उल्लेख की गई है। इससे प्राणी मात्र को भगवान् पशुपति के पूजन का पूर्ण अधिकार हैं। इस विषय का जितना भी विवेचन किया जाय थोड़ा ही है :—

पुरा तु मृण्मयं लिंगमर्च्य लक्ष्मीः प्रयत्नतः।
जाता सौभाग्यसम्पन्ना महादेव प्रसादतः॥

अर्थ—विष्णु वल्लभा लक्ष्मी जी नें भी तो सर्व प्रथम पार्थिव-लिङ्गार्चन द्वारा देवाधिदेव महादेव को तुष्ट कर उनकी कृपा से ही अचल सौभाग्य प्राप्त किया। क्या वे स्त्री नहीं थीं ? ऐसा नहीं, किन्तु स्त्री ही थीं। इतना ही नहीं :—

प्रसवो जायते यस्यास्तया तु शैव पूजनम्।
कर्तव्यं मानसं नित्यं दशाहान्तं प्रयत्नतः॥
दशाहे समनीते तु कृत्वा स्नानं यथाविधि।
शिवलिंगार्चनं कार्यं द्विजस्त्रीभिर्द्विजैरिव॥

अर्थ—जिस स्त्री का नित्य प्रति शिव पूजन का नियम हो, और प्रसव (बालक जन्म) हो जाय तो सूतक काल (१० दिन)

पर्यन्त उसे नित्यनियमानुसार यथा काल प्रयत्न पूर्वक सूतिका गृह में ही मानसिक शिव पूजन करते ही रहना चाहिये।

तदनन्तर १० दिन व्यतीत हो जाने पर विधि पूर्वक अपने कुलमर्यादा के अनुसार स्नानादि करके जिस प्रकार द्विजजन शिव पूजन करते हैं, उसी प्रकार द्विजवधुओं को भी शिवलिङ्ग का पूजन करना चाहिये।

अतः शिवार्चन में स्त्रियों का अनधिकार सिद्ध करने वाले कोरे पण्डित मानियों का यह आक्षेप कपोल कल्पित ही समझना चाहिये। बड़ा आश्चर्य तो यह है कि ऐसे मिथ्या प्रचारकों की दादुरों के समान टर्र-टर्र करने वाली :—

"जरि न जीह मुँह परै न कीरा"

जिह्वा गल कर गिर क्यों नहीं जाती और उनके मुँह में कीड़े क्यों नहीं पड़ जाते।

इनके सिद्धान्त की परिसमाप्ति स्त्रियों को शिव पूजन नहीं करना चाहिये, इतने पर ही निर्भर नहीं है; प्रत्युत लिङ्ग का पूजन करना ही नहीं चाहिये। क्या स्त्री, क्या पुरुष, इसमें इति श्री मानते है। विचार की बात है कि जिनकी आँखें याज्ञिक धुयें से आच्छादित हो गई हैं, विवेक नेत्र फूट गये हैं, साथ ही शास्त्रानुशीलन की गन्ध भी नहीं है, ऐसे कोरे पण्डितमानी स्वाभिमानी देहात्मवादियों की बातें कोई भी सद्विवेकी विचारशील बुद्धिमान मान ही कैसे सकता है ? सज्जनों ! तनिक इस ओर भी ध्यान दीजिये।

ईश्वर उवाच :—

यदो नमः शिवायेति एतावत् परमं पदम् ।
अनेन पूजयेल्लिङ्गं लिङ्गे यस्मात् स्थितः शिवः ॥

(अग्नि पुराण अ० ३२७)

अर्थ—ईश्वर बोले कि जब "ॐ नमः शिवाय" यह मंत्र ही परम पद (मोक्ष) रूप है, तब इससे ही लिङ्ग को पूजें क्योंकि भगवान् शङ्कर का लिङ्ग में ही निवास है।

अनुग्रहाय लोकानां धर्मकामार्थमुक्तिदः ।
यो न पूजयते लिङ्गं न स धर्मादि भाजनम् ॥

(अ० पु० ३२७ अ०)

अर्थ—अतः धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्रदाता समस्त लोकों अर्थात् प्राणी मात्र पर (लोकस्तु भुवने जने प्रत्यमरः) अनुग्रह करने के लिये लिङ्ग रूप से स्थित भगवान् शिव के लिङ्ग का पूजन जो नहीं करता वह धर्म, अर्थ, काम और मुक्ति का पात्र नहीं होता।

लिङ्गार्चनाद भुक्तिमुक्तिर्यावज्जीवगतो यजेत् ।
वरं प्राणपरित्यागो भुञ्जीतापूज्य नैव तम् ॥

(अ० पु० ३२७ अ०)

अर्थ—चूंकि लौकिक भोग और पारलौकिक मोक्ष उभय प्राप्ति लिंगार्चन से ही होती है, इसलिए अपने जीवन पर्यन्त जब तक कालकवलित न हो तब तक शिवलिंग का भजन

पूजन करते ही रहना चाहिये। भोजन किये बिना प्राणों को त्याग देना तो सर्व श्रेष्ठ है, परन्तु शिवलिङ्ग का पूजन किये बिना भोजन नहीं करना चाहिये.।

सर्वं यज्ञ तपो दाने तीर्थे वेदेषु यत् फलम् ।
तत् फलं कोटिगुणितं स्थाप्य लिङ्गं लभेन्नरः ॥

(अ० पुर ३२७ अ०)

अर्थ—राजसूय, अश्वमेधादि यज्ञों के करने से, चन्द्रायणादि तपश्चरण से, गो, भूमि, हिरण्यादि दान देने से, प्रयागादि तीर्थ सेवन से और समस्त वेदों के अध्ययन से जो पुण्य फल प्राप्त होता है उससे करोड़ों गुणा अधिक फल शिवलिङ्ग को स्थापन करने वाले पुरुष को प्राप्त होता है। यही नही पार्थिव लिंग के विषय में भी कहा है कि—

त्रिसन्ध्यं योऽर्चयेल्लिङ्गं कृत्वा विल्वेन पार्थिवम् ।
शतैकादशिकं यावत् कुलमुद्धृत्य नाकभाक् ॥

(अ० पु० ३२७ अ०)

अर्थ—जो मनुष्य प्रातः काल, मध्याह्न काल और सायंकाल तीनों समय मिट्टी का शिवलिंग बनाकर विल्वपत्र द्वारा पूजन करता है वह अपने कुल की १११ पीढ़ियों का उद्धार करके स्वयं स्वर्ग का भागी होता है।

यो न पूजयते लिङ्गं ब्रह्मादीनां प्रकाशकम् ।
शास्त्रवित्सर्ववेत्तापि चतुर्वेदः पशुस्तु सः ॥

(पद्मपुराण)

अर्थ—ब्रह्मा आदि देवताओं का प्रकाशक अर्थात् ब्रह्म ज्ञानादि गुणों को प्रकाश करने वाले शिवलिङ्ग का पूजन जो नहीं करता वह चारों वेदों तथा सर्व शास्त्रों का ज्ञाता ही क्यों न हो वह पशु तुल्य ही है।

गंगोदकात्पवित्रं तु शिवपादोदकं हितम् ।
पीतं वा मस्तकस्थं वा नृणां पापहरं परम् ॥

(ब्रह्माण्ड पुराण)

अर्थ—गंगा जल से भी पवित्र एवं हितकर शिवजी का चरणोदक पीने तथा मस्तक और शरीर में धारण करने से मनुष्यों के सम्पूर्ण पाप-पुञ्ज नष्ट करता है।

यदक्षीन्दुर्लोके पचति विविधं त्वौषधि गणं,
तथैवान्नं वह्नी रविरपि पुनातीह सकलम् ।
विधिर्यद्रेतोऽजो जनयति जगत्स्थावर चरं,
सुवर्णं यद्रेतः सुरनरगणा बिभ्रति तनौ ॥

अर्थ—जिस प्रकार विराट् स्वरूप शिवजी का नेत्र रूपी चन्द्रमा विविध प्रकार के अन्नादि औषधि समूहों को अमृत वर्षा कर पुष्ट करता है, उसी प्रकार अग्नि रूपी वैश्वानर सभी प्राणियों की जठराग्नि रूप से उनके खाये हुए पदार्थों को पचाता है तथा शरीरों को परिपुष्ट करता है, विराट् रूप शङ्कर का सूर्य रूपी तृतीय नेत्र अखिल ब्रह्माण्डों को पवित्र करता

है, जिन भगवान् शिव के रेत (वीर्य) से उत्पन्न हुए ब्रह्मा जी जड़ और चेतन जगत को उत्पन्न करते हैं तथा जिन शङ्कर भगवान् के वीर्य से उत्पन्न हुये सोने को समस्त देवता, मनुष्य गण अपने-अपने शरीरों में आभूण रूप से धारण करते हैं तथा स्वर्णबंगादि बनाकर औषधि रूप में सेवन करते हैं।

श्रुतिर्यड्ढक्वाजा मनसि दधते वाचि च बुधाः;
यदङ्घ्र्युत्थं चक्रं हरिरवति बिभ्रत्त्रिभुवनम् ।
तथा धत्ते नेत्रं हरयजनसम्भूतमनिशं;
क ईष्टे भोक्तुं तत्परमशिवसम्पर्क रहितम् ॥

अर्थ—जिन भगवान् शङ्कर के डमरू से निकले हुए श्रुतिरूपी पाणिनीय व्याकरण को सारे विद्वान् लोग अपने हृदय और वाणी में धारण करके शास्त्रों के अनेकानेक अर्थ करते हैं, वह शङ्कर जी का निर्माल्य नहीं तो क्या है ? फिर भी शङ्कर के प्रति द्वेष भाव रखना, ऐसे महानुभावों के प्रागल्भ्य एवं पांडित्य को धन्य है ! जिन आशुतोष हर के चरण से उत्पन्न हुए सुदर्शन चक्र को धारण कर श्री विष्णु भगवान् भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक की रक्षा करते हैं और प्रति दिन सहस्र कमलों से शिव पूजन द्वारा प्राप्त पवित्र नेत्र को निरन्तर धारण करने से ही पुण्डरीकाक्ष कहलाते हैं, संसार में कौन ऐसा व्यक्ति है जो उन शिवजी के सम्पर्क से रहित वस्तु का उपभोग करने में समर्थ हो ? ऐसी कोई वस्तु ही नहीं जो शिव भोले भण्डारी

के सम्पर्क से रहित उनका निर्माल्य न हो। एतदर्थ ऐसे सर्व-व्यापी समर्थ परमेश्वर में भेद बुद्धि रखना अज्ञता के सिवाय और कहा ही क्या जा सकता है ?

मह्यमन्नं प्रयत्नेन निवेद्याश्नाति यः सदा ।
स भूपालः सर्ववेत्ता भवत्येव न संशयः ॥

अर्थ—भगवान् शङ्कर जी स्वयं श्री मुख से कहते हैं कि जो मनुष्य नित्य प्रति श्रद्धा एवं प्रयत्न पूर्वक मुझे अन्नादि नैवेद्य निवेदन करके उसे स्वयं भक्षण करता है वह जन्मान्तर में समस्त शास्त्रों का ज्ञाता भूपाल (राजा) होता है। इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं।

गङ्गा-ऽनङ्गरिपोर्जटाविगलिता चन्द्रश्च तन्मस्तके;
केशात्तस्यवियत्ततोविगलिता वृष्टिर्जगज्जीवनी ।
रुद्रोऽग्निः श्रुत एव सर्वमशनं तज्जिह्वया याचते;
निर्माल्यन्तु विहाय भो ! क्षितितले जीवन्ति के मानवाः ॥

अर्थ—पतित पावनी पुण्य-तोया श्री गंगाजी तो कामारि शङ्कर जी की जटा से निकली हैं, त्रिभुवन दीपक अमृतस्रावी चन्द्रमा शशिशेखर के ललाट में विराजमान है, उनके केशों से समुद्भुत आकाश के द्वारा होने वाली वृष्टि ही संसार के समस्त प्राणियों को अन्नरूप जीवन प्रदान करती है, वेदों में ऐसा सुना जाता है कि रुद्र ही अग्नि है, उस अग्निरूपिणी जिह्वा से सभी देवगण अपना-अपना भोजन माँगते हैं। अर्थात् (अग्नि-

र्मुखं हि देवानाम्) अग्नि ही देवताओं का मुख है, जिससे सभी अपना भोजन ग्रहण करते हैं। अहो ! इस वसुधातल में सर्वरूपी भगवान् शिव के निर्माल्य को छोड़कर कौन ऐसे मनुष्य हैं जो जीवित रह सकते हों ?

गंगा पुष्कर नर्मदा च यमुना गोदावरी गोमती;
गंगाद्वारवती प्रयाग बदरी वाराणसी सिन्धुषु ।
वेणी सेतु सरस्वती प्रभृतिषु ब्रह्माण्डभाण्डोदरे;
तीर्थस्नान सहस्रकोटि फलदं श्री शम्भु पादोदकं ॥

अर्थ—श्री गंगा भागीरथी, पुष्कर राज, नर्मदा, जमुना नदी, गोदावरी, गोमती, गंगाद्वार (गंगोत्री), कावेरी, प्रयागराज, बद्रीनारायण, काशीपुरी, सिन्धु नदी अथवा समुद्र वेणी, सेतुबन्ध रामेश्वर, सरस्वती प्रभृति समस्त ब्रह्माण्ड के उदरवर्ती तीर्थों के स्नान-पान की अपेक्षा श्री शम्भु चरणोदक हजारों, करोड़ गुना विशेष पुण्य-फल देने वाला है। अर्थात् शिवचरणोदक त्रिविध ताप पाप नाश करने में पूर्ण समर्थ है।

आकाशंलिंगमित्याहुः पृथिवी तस्य पीठिका ।
आलयः सर्वभूतानां लयनाल्लिंगमुच्यते ॥

अर्थ—आकाश (निर्गुण स्वरूप) को ही मुनिजन लिंग कहते हैं। उस लिंग की पीठिका (पीढ़ा, चौकी) पृथ्वी है अर्थात् पृथ्वी उस निर्गुण लिंग की पीठिका अर्घा है। और यह आकाश रूप लिंग ही अखिल जीव मात्र का आलय (निवास-

स्थान) है तथा प्रलय काल में सभी जीव इस आकाश रूपी लिंग में ही लीन हो जाते हैं। अतएव उसे लिंग कहते हैं।

शिवो हि द्विविधः प्रोक्तो निष्कलः सकलस्तथा ।
निष्कलत्वान्निराकारं लिङ्ग तस्य सुसंगतम् ॥

अर्थ—श्री शिवजी के दो स्वरूप हैं। एक तो कला रहित (निराकार) और दूसरा कला युक्त (साकार)। निष्कल (हस्त पादाद्यवयव रहित) होने से उनके निराकार स्वरूप को लिंग कहना समुचित ही है। लोगों में जो मिथ्या भ्रान्ति फैली है वह सर्वथा निर्मूल, निरर्थक है। चित्रों में जो सावयव स्वरूप देखने में आता है वह भगवान् शङ्कर का साकार रूप है।

सर्वे सकलमात्रत्वादर्च्यन्ते बेरमात्रके ।
शिवस्योभयरूपत्वाल्लिंगे बेरे च पूज्यते ॥
(भविष्य पुराण ह० लि०)

अर्थ—अन्य सभी देवता साकार मात्र होने से मूर्ति में ही पूजे जाते हैं, किन्तु शिवजी साकार, निराकार दोनों रूप होने से लिंग और मूर्ति दोनों में पूजे जाते हैं। अतः किसी प्रकार का संशय न करते हुए भक्ति-भाव से नित्य नियम पूर्वक शिवार्चन वन्दन करना तथा प्रेम पूर्वक प्रसाद भक्षण करना चाहिये।

प्रायः रुद्राक्ष के विषय में तथा भस्म के विषय में भी जनता को शंका तथा भ्रान्ति होती है कि रुद्राक्ष की माला से प्रत्येक

को जप नहीं करना चाहिये तथा भस्म भी सबको नहीं लगाना चाहिये। इस विषय से भी संशय नहीं करना चाहिये क्योंकि शास्त्र प्रमाण है।

यतीनां ज्ञानदं प्रोक्तं वनस्थानां विरक्तिदम् ।
गृहस्थानां मुने तद्वद्धर्मवृद्धिकरंतथा ॥

अर्थ—हे मुने! भस्म तो संन्यासियों को ज्ञान देने वाली, वानप्रस्थों को वैराग्य देने वाली, गृहस्थों के धर्म को बढ़ाने वाली है, उसी प्रकार ब्रह्मचारियों को स्वाध्याय प्रदात्री है। यही नहीं :—

शूद्राणां पुण्यदं नित्यमन्येषां पाप नाशनम् ।
रक्षार्थं सर्वभूतानां विधत्ते वैदिकी श्रुतिः ॥

अर्थ—भस्म शूद्रों को पुण्य प्रदान करने वाली और अन्य वर्णवालों की पाप नाशिनी है। वेद प्रतिपाद्य श्रुतियाँ तो समस्त भूत प्राणियों की रक्षा के लिये अव्यर्थ प्रयोग एकमात्र भस्म का ही विधान करती हैं।

विज्ञानार्थं च सर्वेषां विधत्ते वैदिकी श्रुतिः ।
शिवेन विष्णुना चैव ब्रह्मणा वज्रिणा तथा ॥

अर्थ—वैदिक श्रुति सभी आश्रमों एवं वर्णों के लिए भस्म को ज्ञान प्राप्ति का प्रमुख साधन बतलाती है। शिवजी ने, विष्णुजी ने, ब्रह्माजी ने, वज्रधारी इन्द्र ने एवं सभी अन्य देवों ने भी भस्म धारण किया है।

उमा देव्या च लक्ष्म्या च वाचा चान्याभिरास्तिकैः ।
सर्वस्त्रीभिर्धृतंभस्म त्रिपुण्ड्रोद्धूलनात्मना ॥

अर्थ—उमादेवी, पार्वती एवं लक्ष्मी तथा सरस्वती और अन्य सभी आस्तिक स्त्री-पुरुषों ने भी भस्म त्रिपुण्ड धारण किया तथा सर्वाङ्ग भस्म धारण किया एवं भस्म स्नान किया है।

मानवस्तु वसेन्नित्यं काशीक्षेत्रसमं हि तत् ।
शिवस्य विष्णोर्देवानां ब्रह्मणस्तृप्ति कारणम् ॥

अर्थ—भस्मधारी मनुष्य तो जहाँ नित्य निवास करता है, वह स्थान काशी क्षेत्र के ही समान हो जाता है। कहाँ तक कहा जाय ! भस्म शिवजी, विष्णुजी, ब्रह्माजी तथा अपर सम्पूर्ण देवताओं की तृप्ति का कारण है। अर्थात् भस्म धारण करने से सभी देवी देव प्रसन्न होते हैं।

कृत्वापि चातुलं पापं मृत्युकालेऽपि यो द्विजः ।
भस्मस्नायी भवेत्कश्चित् क्षिप्रं पापैः स मुच्यते ॥

अर्थ—जो कोई द्विजाति असंख्य पाप करके भी मृत्यु काल में भस्म स्नान कर लेता है, वह तत्काल ही समस्त पापों से विमुक्त हो जाता है।

यस्यास्ति सहजाप्रीतिर्मणिवद्भस्म संग्रहे ।
स एव ब्राह्मणो ब्रह्मन् सत्यं सत्यं मयोच्यते ॥
(देवी भागवत स्कं० ११)

अर्थ—श्री लक्ष्मीनारायणजी देवर्षि नारद से कहते हैं

हे ब्रह्मन् ! मैं यह सत्य कहता हूँ, सुसत्य कहता हूँ कि अमूल्य मणि के संग्रह की भाँति भस्म संग्रह करने में भी जिसकी सहजा प्रीति होती है, वही सच्चा ब्राह्मण है।

विभूतिर्भसितं भस्म क्षारं रक्षेति भस्मनो भवन्ति पञ्च नामानि

(बृहज्जाबालोपनिषद् प्र० ब्रा०)

अर्थ—भस्म के क्रमशः (१) विभूति (२) भसित (३) भस्म (४) क्षार (५) रक्षा ये पाँच नाम होते हैं, जिनमें से प्रत्येक का फल भिन्न-भिन्न है।

"पञ्चभिर्नामभिर्भृशमैश्वर्यकारणाद्भूतिः"

उपर्युक्त पाँचों नामों में से अत्यन्त ऐश्वर्य की कारण भूता (अर्थात् भस्मधारी व्यक्ति को अतुल सम्पत्ति प्रापिका) होने से "विभूति" कहते हैं।

"सर्वाघ भक्षणाद्भस्म"

अखिल पाप-पुञ्जों को जलाकर भस्म कर देती है। इस कारण "भस्म" कहते हैं।

"भासनाद्भसितम्"

मस्तकादि अङ्गों में धारण करने से शोभा देती है। अतएव इसे "भसित" कहते हैं।

"क्षारणादापदां क्षारम्"

सर्व आपत्तियों को साफ कर देती है। इस कारण इसको "क्षार" कहते हैं।

"भूतप्रेतपिशाचब्रह्मराक्षसापस्मारभवभीतिभ्योतिभ्योऽभिरक्षणाद्रक्षेति"

भूत, प्रेत, पिशाच, ब्रह्मराक्षस, अपस्मार (मृगी) महामारी, हैजा आदि बीमारियों तथा संसारभय (जन्म मरण), से प्राणि वर्ग का रक्षक होने से इसका नाम "रक्षा" है।

एतानिपञ्च शिवमन्त्र पवित्रितानि,
भस्मानिकामदहनाङ्ग विभूषितानि ॥
त्रैपुण्ड्रकानि रचितानि ललाटपट्टे,
लुम्पन्ति दैवलिखितानि दुरक्षराणि ॥

(देवी भागवत स्क० ११ अ० १३। श्लोक ३५)

अर्थ—पाँच शिव मंत्रों से पवित्र तथा कामदेव को भस्म करने वाले शङ्कर के शरीर में शोभित तथा मस्तक में त्रिपुण्ड (तीन रेखा रूप) रचित यह भस्म ललाट में विधाता के लिये हुए दुरक्षर अर्थात् दुर्भाग्य को भी नाश कर देती है।

आयुष्कामोऽथवा राजन् भूतिकामश्च वै तथा ।
नित्यं हि धारयेद्भस्म मोक्षकामी च वा नरः ॥

अर्थ—हे राजन् ! दीर्घायु चाहने वाले तथा ऐश्वर्य चाहने वाले तथा मोक्ष चाहने वाले मनुष्य को चाहिए कि प्रति दिन भस्म धारण करे।

"रुद्राक्ष के विषय में"

सर्वाश्रमाणां वर्णानां रुद्राक्षाणाञ्च धारणम् ।
कर्तव्यं मन्त्रतः प्रोक्तं द्विजानां नान्यवर्णिनाम् ॥

अर्थ—सभी आश्रमियों और वर्ण वालों को रुद्राक्ष धारण करना चाहिये, परन्तु द्विजातियों को तो मन्त्र द्वारा तथा अन्य द्विजेतरों को बिना मन्त्र के धारण करना चाहिये।

रुद्राक्ष धारणाद् रुद्रो भवत्येव न संशयः ।
पश्यन्नपि निषिद्धाँश्च तथा शृण्वन्नपि स्मरन् ॥
जिघ्रन्नपि तथा चाश्नन् प्रलपन्नपि सन्ततम् ।
कुर्वन्नपि सदा गच्छन् विसृजन्नपि मानवः ॥
रुद्राक्ष धारणादेव सर्व पापैर्न लिप्यते ।

अर्थ—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि रुद्राक्ष धारी मनुष्य साक्षात् रुद्रवत् ही हो जाता है। निषिद्ध नीचों को देखता हुआ, अवाच्य शब्दों को सुनता हुआ, दुर्जनों का स्मरण करता हुआ, सूँघता हुआ, भोजन करता हुआ, निरन्तर प्रलाप करता हुआ, सदा कर्म करता हुआ, चलता हुआ और मल–मूत्र त्याग करता हुआ भी मनुष्य रुद्राक्ष धारण करने मात्र ही से किन्हीं भी पापों से लिप्त नहीं होता।

यो वा को वा नरो भक्त्या धारयेल्लज्जयापि वा ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः सम्यग् ज्ञानमवाप्नुयात् ॥

अर्थ—जो कोई नर अथवा नारी भक्ति-भाव से अथवा लज्जा से भी यदि रुद्राक्ष धारण करे तो वह अखिल पाप समूहों से विमुक्त होकर यथार्थं ज्ञान प्राप्त करता है।

"स तरति पाप्मानं जाबाल श्रुति राह हि"

अर्थ—जाबाल श्रुति यह सुनिश्चित घोष करती है कि रुद्राक्ष सेवी मनुष्य सभी पापों को तर जाता है।

पशवोऽपि च रुद्राक्ष धारणाद्यान्ति रुद्रताम् ।
किमु ये धारयन्ति स्म नरा रुद्राक्ष मालिकाम् ॥

अर्थ—जब कि रुद्राक्ष की माला धारण करने से पशु भी रुद्रता को प्राप्त हो जाते हैं, तब जो मनुष्य होकर रुद्राक्ष की माला धारण करते हैं उनका तो कहना ही क्या? वे निःसन्देह शङ्कर स्वरूप हो मुक्त हो जाते हैं।

कण्ठे रुद्राक्षमाबध्य श्वापि वा म्रियते यदि ।
सोऽपिमुक्तिमवाप्नोति किं पुनर्मानुषोऽपि सः ॥
(देवी भागवत स्क० ११)

अर्थ—यदि श्वान (कुत्ता) भी गले में रुद्राक्ष बाँधकर मरे तो वह भी मुक्त हो जाता है। फिर रुद्राक्षधारी मनुष्य भी मुक्त हो इसका तो कहना ही क्या?

नरो वाप्यथवा नारी पापिष्ठा भवति क्षणात् ।
विभूतिर्यस्य नो भाले नाङ्गे रुद्राक्ष धारणम् ॥

अर्थ—जिसके मस्तक में विभूति और कण्ठ में रुद्राक्ष न हो (अर्थात् इनमें श्रद्धा न हो) ऐसा नर अथवा नारी कोई भी क्यों न हो, शीघ्रातिशीघ्र घोर पातकी होता है। एतदर्थं भस्म और रुद्राक्ष का सभी को अधिकार है।

रुद्राक्षमूलं तद्ब्रह्मा तन्नालं विष्णुरेव च ।
तन्मुखं रुद्र इत्याहुस्तद्बिन्दुः सर्व देवताः ॥
(रुद्र जाबालोपनि०)

अर्थ—रुद्राक्ष की मूल को ब्रह्मा, उसकी नाल को ही विष्णु, उसके मुख को रुद्र कहते हैं और उसके विन्दु ही सर्वं देव कहे जाते हैं। अतः रुद्राक्ष सर्वं देवमय है तथा त्रिनेत्र शिवजी के नेत्रों से उत्पन्न होने के कारण इसे "रुद्राक्ष" कहते हैं।

त्रिंशदक्षैःकृतामाला धनदा जपकर्मणि ।
सप्तविंशतिसंख्यातैः कृता मुक्तिप्रदा भवेत् ॥
अक्षैस्तुपञ्चदशभिरभिचारफलप्रदा ।
अष्टोत्तरशतेनापि माला सर्वार्थसाधिका ॥
(यन्त्र रहस्ये ४३–४४)

अर्थ—३० तीस रुद्राक्षों से वनाई गई माला जपने से धन देने वाली, २७ सत्ताईस रुद्राक्षों से बनी माला जपने से मुक्ति देने वाली, १५ पन्द्रह रुद्राक्षों से निर्मित माला जपने से आभिचारिक फल (मारण सिद्धि) प्रदान करने वाली और १०८ रुद्राक्षों की माला से किया गया जप सभी कामना सिद्ध करता है।

तुलसीदलमात्रेण यः करोति शिवार्चनम् ।
कुलैकविंशमुद्धृत्य शिवलोके महीयते ॥

अर्थ—जो पुरुष केवल तुलसी दल में ही शिव पूजन करता है वह अपने २१ कुलों का उद्धार करके शिव लोक में पूजित होता है ।

तुलसी मञ्जरीभिर्यः कुर्याद्धरिहरार्चनम् ।
न स गर्भ गृहं याति मुक्त एव न संशयः ॥

अर्थ—जो श्रद्धालु पुरुष भक्ति भाव सहित तुलसी की मंजरी से भगवान् विष्णु तथा महादेव का पूजन करता है, वह फिर माता के पेट में नहीं जाता, मुक्त ही हो जाता है, इसमें लेशमात्र भी संदेह नहीं ॥

❀ सप्तश्लोकी गीता ❀

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन्देहं सयाति परमांगतिम् ॥१॥

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या, जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च ।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति, सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसंघाः ।२।

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरो मुखम् ।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥३॥

कविं पुराणमनुशासितार, मणोरणीयां समनुस्मरेद्यः ।
सर्वस्यधातारमचिन्त्यरूप, मादित्य वर्णं तमसः परस्तात् ॥४॥

ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ।
छन्दांसियस्य पर्णानि यत्तं वेद स वेदवित् ॥५॥

सर्वस्य चाहं हृदिसन्निविष्टो, मत्तः स्मृति ज्ञानमपोहनं च ।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो, वेदान्द कृद्वेदविदेव चाहम् ॥६॥

मन्मनाभवमद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामे वैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ॥७॥

॥ ॐ ॥

❀ अथ पंचाक्षर महामंत्र जप विधिः ❀

"मूलमंत्र"

॥ ॐ नमः शिवाय ॥

ॐ अस्य श्री पंचाक्षर महामंत्रस्य भगवान् वामदेव ऋषिः, पंक्तिश्छन्दः, सदाशिवो देवता मं बीजं यं शक्तिः। नं कीलकम् ॥ श्री साम्ब सदाशिव देवता प्रीत्यर्थे जपे विनियोगः ॥ अथ ऋष्यादिन्यासः ॥ ॐ वामदेव ऋषये नमः शिरसि। ॐ पंक्तिश्छन्दसे नमो मुखे। ॐ सदाशिव देवतायै नमो हृदये ॥ ॐ मं बीजाय नमो गुह्ये ॥ ॐ यं शक्तये नमः पादयोः ॥ ॐ नं कीलकाय नमः सर्वांगे। इति ऋष्यादिन्यासः ॥

॥ अथ करन्यासः ॥

ॐ नं अंगुष्ठाभ्यां नमः ॥ ॐ मं तर्जनीभ्यां नमः ॥ ॐ शिं मध्यमाभ्यां नमः ॥ ॐ वां अनामिकाभ्यां नमः ॥ ॐ यं कनिष्ठिकाभ्यां नमः ॥ ॐ नमः शिवाय करतल करपृष्ठाभ्यां नमः ॥

॥ अथ हृदयादिन्यासः ॥

ॐ नं हृदयाय नमः ॥ ॐ मं शिरसे स्वाहा ॥ ॐ शिं शिखायै वषट् ॥ ॐ वां कवचाय हुम् ॥ ॐ यं नेत्र नेत्राय वौषट् ॥ ॐ नमः शिवाय अस्त्राय फट् ॥ इति हृदयादिन्यासः ॥

॥ अथ ध्यानम् ॥

ॐ ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारु चन्द्रावतंसं;
रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीति हस्तं प्रसन्नम्।
पद्मासीनं समन्तात्स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृत्तिवसानन्;
विश्वाद्यं विश्ववन्द्यं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम् ॥

इति ध्यानमुक्त्वा ॥

श्री गुरु मंत्रं जपेत्। ॐ तत्सत्। ॐ तत्सत् ॥

श्री साम्ब सदाशिव शरणाष्टकम्

ॐ शिव ॐ शिव परात्पराशिव ॐ काराशिव तव शरणम्।
हे शिवशंकर भवानी शंकर उमा महेश्वर तव शरणम्।
हे वृषभध्वज हे धर्मध्वज साम्ब सदाशिव तव शरणम्।
हे जगदीश्वर पिनाकपाणि त्रिनयन शंकर तव शरणम्।
हे शशिशेखर शंभु शिवाप्रिय शिव गंगाधर तव शरणम्।
त्रिशूलपाणि सोम शिवा प्रिय शिव शिपिविष्टः तव शरणम्।
हे मृत्युञ्जय पशुपति शंकर भुजंग भूषण तव शरणम्।
हे अविनाशी कैलाशवासी पार्वती पति तव शरणम्।

❀ भजनमाला ❀

भजन नं० १

धरम पर डट जाना ना कोई बात बड़ी है ॥
हो गए हरिश्चन्द्र से दानी,
नीच घर भरन लगे वे पानी ।
बिक गये आप बेच दी रानी,
बिके तो बिक जाना ना कोई बात बड़ी है ॥१॥
(धरम पर डट

हो गए मोरध्वज हरवारा,
जिनके घर गए प्रभु अवतारा ।
पुत्र के शिर पर रख दिया आरा,
कटे तो कट जाना ना कोई बात बड़ी है ॥२॥
(धरम पर डट)

शत नहीं द्रौपदी ने हारा
जिसका बढ़ गया चीर हजारा ।
दु:शासन खेंचत खेंचत हारा,
फटे तो फट जाना ना कोई बात बड़ी है ॥३॥
(धरम पर डट)

हो गए भक्त प्रह्लाद सुधन्वा,
जिन्होंने अर्पण कर दी तन्वा ।
असुर ने तप्त तेल कढ़वाया,
जले तो जल जाना ना कोई बात बड़ी है ॥४॥
(धरम पर डट)

कहत टुकड़िया दास गिरधारी,
भजो तुम राम कृष्ण नरनारी ।
यह संसार जेहल बड़भारी,
छूटे तो छुट जाना ना कोई बात बड़ी है ॥५॥
(धरम पर डट)

भजन नं० २

जीवन का मैंने सौंप दिया सब भार तुम्हारे हाथों में ।
उद्धार पतन अब मेरा है सरकार तुम्हारे हाथों में ॥
हम तुमको कभी नहीं भजते फिर भी तुम हमें नहीं तजते ।
अपकार हमारे हाथों में उपकार तुम्हारे हाथों में ॥ टेक १ ॥
हममें तुममें कुछ भेद नहीं हम नर हैं तुम नारायण हो ।
हम हैं संसार के हाथों में संसार तुम्हारे हाथों में ॥ टेक २ ॥
कल्पना बनाया करती है एक सेतु विरह के सागर पर ।
जिससे हम पहुँचा करते हैं उस पार तुम्हारे हाथों में ॥ टेक ३ ॥
दृग बिन्दु कह रहे हे भगवन् दृग नाव विरह सागर में है ।
मझधार हमारे हाथों में पतवार तुम्हारे हाथों में ॥ टेक ४ ॥

भजन नं० ३

अब ना बनी तो फिर ना बनेगी ॥
नर तन बारबार नहीं मिलता,
फिर फिर जननी नाहि जनैगी ॥ टेक ॥
लख चौरासी जाय पड़ेगी,
फिर फिर यमसों रारि ठनेगी ॥ टेक ॥
हरि गुण गाय परम यश लइले,
फिर नहिं तेरी तान तनैगी ॥ टेक ॥
सूरदास यह काया माटी,
फिर माटी में जाय मिलैगी ॥ टेक ॥

भजन नं० ४

तुम गोपाल मोसों बहुत करी ॥
नर देही दीनी सुमरन को,
मो पापी तें कुछ न सरी ।
गर्भत्रास अतित्रास अधोमुख,
तहाँ न मेरी सुध बिसरी ॥ टेक ॥

पावक जठर जरन नहिं दीन्ही,
कंचन सी मेरी देह करी ।
जग में जनमि पाप बहु कीन्हे,
आदि अन्त लौं सब बिगरी ॥
सूर पतित तुम पतित उधारन,
अपने विरद की लाज धरी ॥ टेक ॥

भजन नं० ५

कृष्ण जी गोपाल लाल, नन्दलाल गाये जा
हरि के चरण में अपना मन लगाये जा
वंशरी बजाये जा धेनु चराये जा
राधे कृष्ण राधे कृष्ण राधे कृष्ण गाये जा ॥ टेक ॥
रास रचाये जा मक्खन चुराये जा
श्याम सुन्दर मदन मोहन गोपी कृष्ण गाये जा
राधे कृष्ण राधे कृष्ण राधे कृष्ण गाये जा ॥ टेक ॥

भजन नं० ६

स्वामी परदेशी फकीर कोई दिन याद करोगे ।
भजलो राम रघुबीर कोई दिन याद करोगे ॥
माता पिता और भाई बहिना भूल चूक की माफी देना ।
यह है अधम शरीर कोई दिन याद करोगे ॥
नंदलाल से करौ विनती जिससे हमारा हो मिलना जल्दी ।
श्री यमुना जी के तीर कोई दिन याद करोगे ॥
रमता योगी बहता पानी इनकी महिमा किसने जानी ।
चारों मुल्क जगीर कोई दिन याद करोगे ॥
जिला मीरजापुर विन्ध्य पर स्वामी जी रहते हैं ।
वहीं पर श्री गीता नाम शरीर कोई दिन याद करोगे ॥
इस कीर्तन को भूल न जाना सत्संगति में रोजहि आना ।
यह है अरज आखीर कोई दिन याद करोगे ॥

भजय नं० ७

बहुत दियो अब कछु न चाहिये केवल अपना नाम प्रभु ।
राम नाम का अमृत पीकर हो जाऊँ बलवान प्रभु ॥ टेक ॥
कोई कहे मुरलीधर माधव कोई कहे धनश्माम प्रभु ॥ टेक ॥

भजन नं० ८.

भजो शिव नाम नर प्यारे वृथा क्यों जन्म खोते हो ।
समय अनमोल खो अपना गये अवसर को रोते हो ॥१॥
करी शिव ने बड़ी दाया दिया नरदेह जो तुमको ।
भला पारस मणी पाकर नहीं क्यों हेम होते हो ॥ २ ॥
उचित तो था कि यह नर-देह पा नित "ईश" को भजते ।
किन्तु शिव शिव कि तज शिव-पथ बैंल से तुम तो जोते हो ॥ ३ ॥
किया कुछ हाथ आने का न पश्चात्ताप पीछे का ।
सुनिश्चित सत्य कथनी यह मेरी तुम फिर भी टोते हो ॥ ४ ॥
न बिगड़ा कुछ भी अब "शिव" के शरण तन मन से हो जाओ .
न खाना चाहते संसार-सागर में जो गोते हो ॥ ५ ॥

❀ भगवान् के १०८ नाम की माला ❀

ॐ अजर अमर अविगत अविनाशी, अलखनिरंजन स्वामी ।
पुरुष पुरातन पुरुषोत्तम, प्रभु पूरण अन्तर्यामी ॥
कृष्ण कन्हैया विष्णु नारायण, ज्योति स्वरूप विधाता ।
अपरम्पार मुकुन्द मुरारी, दीन बन्धु ब्रजनाथा ॥
यादव पति जगदीश चतुर्भुज, निर्भय सर्व प्रकाशी ।
पारब्रह्म प्राणन के दाता, सब घट-घट के वासी ।
निर्विकार परमेश्वर गिरधर, माधव गोविन्द प्यारा ।
कमल नयन केशव मधुसूदन, सबमें सबसे न्यारा ।

हृषीकेश मुरलीधर मोहन, ॐ अखिल अयोनी ।
भगवत् वासुदेव भगवाना, ज्ञानी ध्यानी मौनी ।
दीनानाथ गोपाल हरिहर, गरुड़ध्वज घनश्यामा ।
भक्तिवत्सल अरु देवकिनन्दन, करता सब विधिकामा ।।
आदि प्रधान माधुरी मूरति, धरणीधर बलबीरा ।
नन्द नन्दन अरु यशोदा नन्दन, सुन्दर श्याम शरीरा ।।
परशुराम नरसिंह विश्वम्भर, अचल अखण्ड अरूपी ।
ईश अगोचर और जगत गुरु, परमानन्द बहुरूपी ।
करुणामय कल्याण अनन्ता, दयासिन्धु बनवारी ।
धारण शंख चक्र रुक्मिणीपति, आनन्द कन्द बिहारी ।।
परम दयाल मनोहर नरहरि, कृपानिधी फलदाता ।
कंस निकन्दन रावण गञ्जन, जगपति लक्ष्मीनाथा ।।
जगन्नाथ अरु बद्रीनाथा, निर्गुण सगुण धारी ।
दामोदर रघुबर सीतापति, रामा कुञ्ज बिहारी ।।
दुष्ट दलन सन्तन को रक्षक, सकल सृष्टि के सांई ।
दुःख हरण के कौतुक अनगिन, शेष पार नहिं पाई ।
सौ अरु आठ नाम की माला, जो नर मुख से उचारे ।
अपने कुल की सारी पीढ़ी, एक रसों को तारे ।।
गुरु शुकदेव मंत्र निज दीन्हा, राम नाम तत् सारा ।
चरणदास निश्चय सो जप कर, उतरे भवजलपारा ।।

॥ इति समाप्तम् ॥